CPRCI (ML) की विसंगतिपूर्ण अवस्थितियां-
एक आलोचना

प्रारम्भ में :

कम्युनिस्ट पार्टी रिआर्गनाइजेशन सेण्टर ऑफ इण्डिया (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) (CPRCI –ML) देश के प्रमुख कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठनों में से एक संगठन है। यह संगठन भारत में कम्युनिस्ट पार्टी को पुनर्संगठित करने का कार्यभार अपने सम्मुख रखता है, इस सन्दर्भ में यह कम्युनिस्ट पार्टी न होकर पूर्व-पार्टी संगठन है। इस अवस्थिति को हम भी ठीक समझते हैं। देश के मौजूदा कम्युनिस्ट संगठनों के बारे में यही हमारी राय भी है।

CPRCI (ML) मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ विचारधारा को अपना पथ प्रदर्शक सिद्धान्त मानता है। हम भी मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ विचारधारा को अपना पथ प्रदर्शक सिद्धान्त मानते हैं यद्यपि माओ विचारधारा के बोध (percepience) को लेकर फर्क मौजूद हैं।

CPRCI (ML) भारत को साम्राज्यवादी नव औपनिवेशिक चरण में अर्द्ध -सामन्ती अर्द्ध -औपनिवेशिक देश मानता है और तदनुसार क्रांति की मंजिल जनता की जनवादी क्रांति (people's Democratic Revolution) मानता है।

CPRCI (ML) का भारत की क्रांति का कार्यक्रम तथा भारत और शेष दुनिया का विश्लेषण ही हमारी आलोचना की मुख्य विषय-वस्तु है। प्रस्तुत आलेख इसी विषय-वस्तु के ईद-गिर्द लिखा गया है।

प्रस्तुत आलोचना इस भावना के साथ की जा रही है कि भारत के समाज विश्लेषण और क्रांति की मंजिल के सवाल पर एक स्वस्थ बहस को जन्म दिया जा सके और भारतीय क्रांति के एक महत्वपूर्ण सवाल को हल किया जा सके। इसी बात से जुड़ी हुयी बात मौजूदा दुनिया के विश्लेषण तथा साम्राज्यवाद के तीसरी दुनिया के साथ रिश्तों के सन्दर्भ में भी है।

CPRCI (ML) के निम्न प्रमुख दस्तावेजों को हमने अपनी आलोचना का आधार बनाया है।

-जुलाई, 1995 में CPRCI (ML) की केन्द्रीय काफ्रेंस द्वारा स्वीकार किये गये दस्तावेज: भारत में जनता की जनवादी क्रांति के लिये कार्यक्रम (Programme for People's Democratic Revoulation in India) , भारतीय क्रांति का रास्ता (Path of The Indian Revolution) , सांगठनिक लाइन-संविधान (Organisational Line-Constitution) ।

-सितम्बर, 1996 में केन्द्रीय कमेटी का 'वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति और हमारे कार्यभार' (Present International Situation and our Tasks) नामक प्रस्ताव। CPRCI (ML) के मुखपत्र 'the Comrade' के अंक 4 (जनवरी, 1997) में प्रकाशित।

– दिसम्बर, 1996 में केन्द्रीय कमेटी का 'वर्तमान राष्ट्रीय परिस्थिति और हमारे कार्यभार (Present National Situation and our Tasks) नामक प्रस्ताव। 'the Comrade' के अंक 5 (मई, 1997) में प्रकाशित।

– 'the Comrade' के विभिन्न अंक (4,5,7,8,11-12,13-14,15-16,17-18, 19) जो हमें उपलब्ध हुये हैं।

उपरोक्त सभी सामग्री क्योंकि अंग्रेजी में है, अतः प्रस्तुत आलेख मे सभी अनूदित हिस्से हमारे हैं।

CPRCI (ML) द्वारा प्रस्तुत सांगठनिक लाइन की कई बातों यथा जनवादी केन्द्रीयता, गुप्त पार्टी की अवधारणा, पार्टी-संगठन तथा जन-संगठन के बीच के रिश्ते आदि से हम कमोबेश सहमत हैं। इनकी सांगठनिक लाइन हमारी सांगठनिक लाइन से इन सवालों पर मेल खाती है। सांगठनिक लाइन में भिन्नता के स्रोत वही हैं जो हमारे CPRCI (ML) से भारतीय समाज के विश्लेषण, क्रांति के कार्यक्रम व मंजिल तथा रणनीतिक लाइन आदि को लेकर हैं।

प्रस्तुत आलेख में हम सबसे पहले एक अवधारणागत सवाल को लेंगे तत्पश्चात अन्य मुद्दें को छुयेंगे। यह अवधारणागत सवाल राष्ट्रीय मुक्ति का सवाल है। यह एक महत्वपूर्ण सवाल है।

क्योंकि CPRCI (ML) से हमारे मतभेद भारत तथा शेष दुनिया के विश्लेषण, साम्राज्यवाद के तीसरी दुनिया से सम्बन्धों के चरित्र, भारतीय क्रांति के कार्यक्रम तथा रास्ते को लेकर हैं, अतः इन सवालों से जुड़े हुये ढेरों अन्य छोटे-छोटे प्रश्नों को इस आलेख में या तो छोड़ दिया गया या उनकी बस चलते-चलते चर्चा कर दी गयी है। यद्यपि वे भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं।

यहां उठाये गये सवालों को हम पहले ही 'लाल सलाम' के विभिन्न अंकों में उठा चुके हैं अतः इन्हें उनसे जोड़कर देखा जाना चाहिये। उस गहराई तक जाना तथा किसी एक ही सवाल के विविध आयामों को इस आलेख की सीमा के चलते छूना सम्भव नहीं है।

राष्ट्रीय मुक्ति का सवाल एक राजनैतिक सवाल है

CPRCI (ML) अपने मुखपत्र श्जीम ब्वउतंकमश के अंक 15.16 (अगस्त एवं दिसम्बर, 2000) में इस बात को स्पष्ट तौर पर रखता है कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता के सवाल पर एकीकृत (Integrated) दृष्टिकोण अपनाया जाय। यह CPRCI (ML) की राष्ट्रीय मुक्ति के सवाल पर मूल थीसिस का हिस्सा है तथा देश-दुनिया के विश्लेषण तथा कार्यभारों को बुनियादी रूप से प्रभावित करता है। यह CPRCI (ML) के अन्य दस्तावेजों में भी परिलक्षित होता है।

CPRCI (ML) कई कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों की इस बात के लिये आलोचना करता है कि वे राजनीतिक आजादी और आर्थिक आजादी के सवाल को दो अलग-अलग सवालों के बतौर लेते हैं जबकि यह एक ही सवाल– राष्ट्रीय आजादी– के दो एकीकृत पहलू (ैpects) हैं। उन्हीं के शब्दों में,

> ''कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के बीच यह एक प्रवृत्ति है कि वे राजनीतिक आजादी और आर्थिक आजादी को एक ही राष्ट्रीय आजादी नामक सवाल के दो एकीकृत पहलू लेने के बजाय दो पृथक सवालों के बतौर लेते हैं। ऐसा करने से, वास्तव में यह

दृष्टिकोण राष्ट्रीय आजादी या गुलामी के सवाल को उसके भौतिक ऐतिहासिक सन्दर्भ साम्राज्यवाद द्वारा औपनिवेशिक उत्पीड़न और शोषण (प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष) से अलग कर देता है। दूसरे शब्दों में, राष्ट्रीय आजादी या गुलामी के सवाल को साम्राज्यवाद और राष्ट्रों के बीच के बुनियादी अन्तरविरोध जिसकी उपस्थिति या समाधान क्रमशः राष्ट्रीय गुलामी या राष्ट्रीय मुक्ति को परिभाषित करता है से असम्बद्ध (delink) कर दिया जाता है।''

(पेज-25, पैरा-1, अंक 15.16, 'the Comrade', The Need for an Integrated view of National Independence)

यह लेख आगे यह कहता है कि राष्ट्रीय आजादी के इन दो पहलुओं में अन्तर विशिष्ट सन्दर्भ में विशिष्ट उद्देश्य के लिये किया जा सकता है। इसको स्पष्ट करते हुये लेख कहता है कि ऐसा संक्रमणकालीन अवस्था में ही किया जा सकता है। ऐसी संक्रमणकालीन अवस्था तब पैदा हो सकती है जब किसी देश में साम्राज्यवाद विरोधी ताकतें सत्ता में कब्जा कर चुकी हों परन्तु अर्थव्यवस्था पर से साम्राज्यवाद की पकड़ को तुरन्त खत्म करना सम्भव न हो । यह अन्तर संक्रमणकालीन अवस्था के समाप्त होते ही अपनी वैधता खो देगा। भारत के सन्दर्भ में यह लेख कहता है कि भारत ने अपनी राष्ट्रीय मुक्ति की लड़ाई में कभी भी ऐसी संक्रमणकालीन अवस्था का अनुभव नहीं किया। ''सत्ता हस्तांतरण'' के दशक में भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवादी पूंजी अपने आकार में दुगुनी हो गयी थी और अमेरिकी साम्राज्यवादी पूंजी तेजी से भारतीय अर्थव्यवस्था में प्रवेश कर गयी थी।

CPRCI (ML) की यह अवधारणा न केवल गलत है बल्कि गैर लेनिनवादी भी है। लेनिन के अनुसार राजनैतिक आजादी के सवाल को आर्थिक आजादी के साथ जोड़ना गलत है और यह ''साम्राज्यवादी अर्थवाद'' है।

लेनिन ने इस बात को स्थापित किया है कि आत्मनिर्णय के अधिकार या राजनीतिक स्वतंत्रता के सवाल को आर्थिक आजादी से नहीं जोड़ा जाना चाहिये। अपनी पुस्तिका 'मार्क्सवाद का विकृत रूप तथा ''साम्राज्यवादी अर्थवाद'' (A Caricature of Marxism and Imperialist Economism) ' में लेनिन ने प. कीयेवस्की की इसी बात की आलोचना की है कि वो साम्राज्यवाद के अन्तर्गत आत्मनिर्णय के अधिकार को आर्थिक ''असाध्यता'' से जोड़ देता है। वहीं लेनिन ने इस बात को स्थापित किया है कि आत्मनिर्णय का अधिकार एक राजनीतिक सवाल है और इसे इसी रूप में लिया जाना चाहिये।

यहां हम लेनिन को उद्घृत करेंगे:

> ''एक देश की बड़ी वित्त पूंजी दूसरे, राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र देश के अपने प्रतिद्वंद्वियों को सदा खरीद सकती है और बराबर खरीदती रहती है। आर्थिक दृष्टि से यह पूर्णतया साध्य है। राजनीतिक समामेलन के बिना भी आर्थिक ''समामेलन'' **पूर्णतया** ''साध्य'' है और सतत रूप से होता रहता है। साम्राज्यवाद संबधी साहित्य में आप बराबर इस प्रकार के संकेत पायेंगे कि, मिसाल के लिए, अर्जेंटाइन वास्तव में ब्रिटेन का ''व्यापारिक उपनिवेश'' है या यह कि पुर्तगाल वास्तव में ब्रिटेन का ''दास'' है, आदि। और यह सच है: इन देशों का ब्रिटिश बैंकों पर

आर्थिक रूप से निर्भर होना, उन पर ब्रिटेन का कर्जा चढ़ना, उनकी रेलों, खानों, जमीनों, आदि का ब्रिटेन के हाथ में चला जाना– इन सबकी बदौलत ब्रिटेन उनकी राजनीतिक स्वतंत्रता का अतिक्रमण किये बिना उन्हें आर्थिक रूप से ''समामेलित'' कर देता है।

''जातियों के आत्मनिर्णय का अर्थ है उनकी राजनीतिक स्वाधीनता। साम्राज्यवाद जिस प्रकार सामान्यत: लोकतंत्र की जगह अल्पतंत्र स्थापित करने की चेष्टा करता है, उसी प्रकार वह जातियों की राजनीतिक स्वाधीनता का अतिक्रमण करने की चेष्टा करता है, क्योंकि राजनीतिक समामेलन अर्थिक समामेलन को अधिक सहज और अधिक सस्ता (अफसरों को रिश्वत देकर अपनी ओर कर लेना, कन्सेशन हासिल करना, लाभप्रद कानून पास करवाना, आदि अधिक सहज है) , अधिक सुविधाजनक, अधिक शांतिमय बना देता है। परंतु साम्राज्यवाद के अंतर्गत आत्मनिर्णय की **आर्थिक दृष्टि** से ''असाध्यता'' की बात करना कोरी बकवास है।''

(लेनिन, मार्क्सवाद का विकृत रूप तथा ''साम्राज्यवादी अर्थवाद'', पृष्ठ–167 पैरा–2 व 3, खण्ड– 6, संकलित रचनाएं दस खण्डों में, हिन्दी में, प्रगति प्रकाशन मास्को, जोर मूल में)

CPRCI (ML) को लेनिन की बातों पर गौर करना चाहिये और राजनैतिक आजादी और आर्थिक आजादी के सवाल को अलग–अलग लेना चाहिये। राष्ट्रीय आजादी का सवाल एक राजनीतिक सवाल है इसे आर्थिक आजादी से गड्ड–मड्ड नहीं किया जाना चाहिये।

जहां तक ''राष्ट्रीय आजादी या गुलामी के सवाल के भौतिक ऐतिहासिक सन्दर्भ''– ''साम्राज्यवाद द्वारा औपनिवेशिक उत्पीड़न और शोषण (प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष) '' का सवाल है लेनिन ने यह स्थापित किया है कि राजनीतिक स्वतंत्रता वित्त पूंजी के लिये बाधक नहीं है। साम्राज्यवाद के लिये यह कतई सम्भव है कि वो बिना प्रत्यक्ष या परोक्ष राजनीतिक नियंत्रण के भी अपना आर्थिक प्रभुत्व बनाये रखे और वित्तीय पूंजी द्रुत गति से अपना आकार बढ़ाती रहे। यह हमारे द्वारा पेश किये गये उपरोक्त उद्धरण से स्पष्ट है।

अत: राष्ट्रीय आजादी के सवाल को साम्राज्यवाद से सम्पूर्ण विच्छेद से जोड़ने के स्थान पर यह देखा जाना चाहिये कि क्या तीसरी दुनिया के देशों पर साम्राज्यवाद का प्रत्यक्ष (औपनिवेशिक) या परोक्ष (नव औपनिवेशिक) राजनीतिक नियंत्रण है कि नहीं। यदि राजनीतिक नियंत्रण का सवाल हल हो गया है तो हमें मानना होगा कि राष्ट्रीय मुक्ति का बुर्जुआ जनवादी कार्यभार मूलत: पूरा हो गया है यद्यपि इसका अर्थ यह नहीं होगा कि वो देश साम्राज्यवादी वित्तीय पूंजी के हजारों–हजार बन्धन से मुक्त है कि नहीं। लेनिन ने रोजा लक्जमबर्ग की इस बात के लिये आलोचना की थी कि वे राजनीतिक आत्मनिर्णय के प्रश्न को आर्थिक स्वाधीनता के प्रश्न से जोड़ देती हैं। लेनिनवाद इस सवाल पर बहुत स्पष्ट रहा है।

CPRCI(ML) का यह दृष्टिकोण कि राष्ट्रीय आजादी के सवाल पर एकीकृत दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिये का प्रभाव उनके साम्राज्यवाद से तीसरी दुनिया के सम्बन्धें से सम्बन्धित सारे विश्लेषण पर स्पष्ट तौर से पड़ता है। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद की दुनिया में इस सन्दर्भ में जो प्रभाव पड़ा है, वह यह है कि दुनिया औपनिवेशिक चरण से नव औपनिवेशिक चरण में प्रवेश कर

गयी है और इन अर्थो में राष्ट्रीय मुक्ति का कार्यभार मूलत: बचा हुआ है।क्योंकि यह यथार्थ से मेल नहीं खाता है अत: CPRCI (ML) को राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति के विश्लेषण में अन्तरविरोधी व विसंगत निष्कर्षो को निकालने को बाध्य कर देता है। यदि राष्ट्रीय मुक्ति के सवाल को एक राजनीतिक सवाल माना जाय तो ये विसंगतियां व अन्तरविरोधी निष्कर्ष स्वत: समाप्त हो जायेंगें और यही इस सवाल पर सही लेनिनवादी अवस्थिति भी होगी।

हमारा मानना है कि औपनिवेशिक और नव औपनिवेशिक चरण के बीतने के साथ ही यह सवाल मूलत: हल हो गया है। अब राष्ट्रीय मुक्ति के जो भी कार्यभार बचे है उन्हें समाजवादी क्रांति ही हल करेगी। स्पष्ट तौर पर हम कह सकते है कि तीसरी दुनिया के अधिकांश देशों में अब राष्ट्रीय जनवादी या जनता की जनवादी क्रांतियां नहीं होंगी। राष्ट्रीय मुक्ति का सवाल मूलत: हल हो चुका है। इसी सवाल पर विस्तृत चर्चा 'लाल सलाम' के अंक-3 (अप्रैल, 2001) में ''राष्ट्रीय मुक्ति के सवाल पर कुछ बातें'' नामक लेख में की गयी है और विविध पहलुओं से इस सवाल को छुआ गया है।

साम्राज्यवाद और उससे जुड़े हुये सवाल

CPRCI (ML) साम्राज्यवाद को दो चरणों साम्राज्यवादी औपनिवेशिक चरण तथा साम्राज्यवादी नव औपनिवेशिक चरण के रूप में देखता है। साम्राज्यवाद के वर्तमान चरण को नव औपनिवेशिक चरण के रूप में लेता है।

यह विश्लेषण मूलत: 1963 की आम दिशा में प्रस्तुत विश्लेषण है। 1963 से साम्राज्यवाद के साथ तीसरी दुनिया के सम्बन्धों में व्यापक परिवर्तन आ चुका है। औपनिवेशिक चरण में साम्राज्यवाद तीसरी दुनिया के देशों पर पूर्णत: तथा प्रत्यक्षत: नियंत्रण रखते थे (किसी देश के सम्पूर्ण भू-भाग पर नियंत्रण की भिन्न स्थिति तभी पैदा होती थी जबकि किसी देश पर नियंत्रण को लेकर कई साम्राज्यवादी ताकतें आपस में तीखे और सीधे संघर्ष में उलझी होती थी, जैसे कि चीन में) तथा नव औपनिवेशिक चरण में अप्रत्यक्ष राजनैतिक नियंत्रण (जैसा कि लैटिन अमेरिका के कई देशों तथा दूसरे विश्वयुद्ध के बाद एशिया-अफ्रीका के कई देशों के साथ हुआ, जिसमें ये देश यूरोपीय साम्राज्यवादियों के औपनिवेशिक जुए को उतार फेंकने के बाद अमेरिकी या किसी अन्य साम्राज्यवादी शक्ति के चंगुल में फंस गये जिन्होंने देशी शासकों के जरिये अपने राजनैतिक नियंत्रण को बनाये रखा था) मुख्य चारित्रिक विशेषता रही है जबकि वर्तमान चरण जिसे आर्थिक नव औपनिवेशिक चरण के रूप में चिह्नित किया जाना चाहिये उसमें तीसरी दुनिया के अधिकांश देशों को साम्राज्यवाद द्वारा मूलत: प्रत्यक्ष या परोक्ष राजनैतिक नियंत्रण में रखना सम्भव नहीं रह गया है। औपनिवेशिक और नव औपनिवेशिक दुनिया एक मृत होती हुयी परिघटना है।

बीसवीं सदी में दूसरे विश्व युद्ध के बाद का इतिहास राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षो के एक सशक्त सिलसिले और इसके साथ पहले औपनिवेशिक व्यवस्था के खत्म होने तथा फिर कुछ समय के लिये नव औपनिवेशिक व्यवस्था के कायम होने तथा सत्तर का दशक बीतते -बीतते इन दोनों ही व्यवस्थाओं के मूलत: ध्वंस होने का इतिहास है। पचास व साठ के दशक में नव-औपनिवेशिक व्यवस्था कायम हुयी थी और विशेषकर अमेरिकी साम्राज्यवादी नव- स्वाधीन देशों में से कई देशों को

नव-औपनिवेशिक शिकन्जे में जकड़ने में कामयाब हुये थे लेकिन जनता की बढ़ती चेतना व संघर्ष, तत्कालीन विश्व परिस्थिति और नव स्वाधीन देश के शासक वर्गों के अपनी सत्ता व आधार को सुदृढ़ करने के प्रयासों के चलते अधिकांश तीसरी दुनिया के देशों नव-औपनिवेशिक जुए को उतारने के साथ राजनैतिक आजादी का कार्यभार मूलतः पूरा हो गया है।

राजनीतिक आजादी जो कि बुर्जुआ जनवादी कार्यभार है को तीसरी दुनिया के अधिकांश देशों द्वारा हासिल करने में, पहले समाजवादी खेमे तथा बाद के दौर में अन्तर -साम्राज्यवादी अन्तरविरोध की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका रही है । इसी दौर में अपनी राजनीतिक आजादी को सुदृढ़ करने के लिये तीसरी दुनिया के शासकों ने ओपेक, गुट-निरपेक्ष आंदोलन, G-77 जैसी सामूहिक संस्थायें खड़ी कीं ताकि वे साम्राज्यवाद से सामूहिक ढंग से सौदेबाजी कर सकें।

यहां हम इस बात पर जोर देना चाहेंगे कि अपनी राजनैतिक आजादी को सुदृढ़ करने के दौर में भी और उसके बाद भी, कभी भी, ये देश साम्राज्यवाद के आर्थिक प्रभुत्व व शोषण के दायरे से बाहर नहीं रहे हैं। इन देशों ने विश्व पूंजीवादी व्यवस्था के दायरे के भीतर ही अपने विकास का रास्ता चुना, जो फर्क था वह अलगाव के स्तर को लेकर था। कुछ देशों ने सीमित अलगाव रखा तो कुछों ने अधिक अलगाव रखा।

औपनिवेशिक और नव औपनिवेशिक व्यवस्था के खात्मे के साथ कायम हुयी आर्थिक नव औपनिवेशिक व्यवस्था की चारित्रिक विशेषताओं की संक्षेप में अगर चर्चा की जाये वे इस प्रकार हैं :

लेनिन ने साम्राज्यवाद की पांच विशेषतायें बतायी थी, उन पांच विशेषताओं में से एक कि साम्राज्यवादी शक्तियों ने पूरी दुनिया का क्षेत्रीय बंटवारा (या प्रत्यक्ष उपनिवेश कायम करना) कर लिया है, आज लागू नहीं होती है। प्रत्यक्ष उपनिवेशवाद की समाप्ति के बाद भी, अभी भी, साम्राज्यवाद एक ओर थोड़े से साम्राज्यवादी देशों तथा दूसरी ओर उन पर भांति-भांति से निर्भर देशों की समूची श्रृंखला वाली व्यवस्था है। साम्राज्यवाद द्वारा तीसरी दुनिया को लूटने और अतिलाभ कमाने का मुख्य तरीका आर्थिक है और तीसरी दुनिया के अधिकांश देश राजनीतिक तौर पर आजाद हैं। तीसरी दुनिया के शोषण में साम्राज्यवादी संस्थायें- आई.एम.एफ., विश्व बैंक और विश्व व्यापार संगठन- प्रमुख कारगार हथियार हैं। साम्राज्यवाद अपनी और तीसरी दुनिया की उत्पादन शक्तियों के विशाल फर्क से इस शोषण को जन्म देता है, इसी से अतिलाभ कमाता है। साम्राज्यवाद तीसरी दुनिया की राजनीतिक आजादी पर दवाब बनाये रखता है तथा राजनीतिक और सामरिक तरीकों का इस्तेमाल करता है यद्यपि शोषण का रूप मूलतः आर्थिक है। साम्राज्यवाद को आर्थिक नव-उपनिवेशवाद की स्थिति में उसकी इच्छा के विरूद्ध धकेला गया यद्यपि उसकी राजनीतिक, आर्थिक व सामरिक चौतरफा प्रभुत्व जमाने की इच्छा जस की तस है। इजारेदार पूंजी का चरित्र जस का तस है। तीसरी दुनिया में लूट की मंशा से आ रही इस इजारेदार पूंजी के गौण उत्पाद के रूप में विकृत और असन्तुलित विकास है। तीसरी दुनिया के अधिकांश देशों में पूंजीपति वर्ग का शासन है और ये ही साम्राज्यवाद के तीसरी दुनिया में सामाजिक अवलम्ब हैं तथा इनकी स्थिति दलाल की ना होकर कनिष्ठ साझेदार की है। तीसरी दुनिया का पूंजीपति वर्ग पूर्णतः प्रतिक्रियावादी हो चुका है तथा राष्ट्रीय मुक्ति के बचे-खुचे कार्यभार अब समाजवादी क्रांति ही पूरा करेगी। राष्ट्रीय मुक्ति की धारा अब विश्व सर्वहारा समाजवादी क्रांति का अभिन्न अंग न होकर उसमें समाहित हो गयी है।

CPRCI (ML) इन परिवर्तनों को अपने नोटिस में नहीं लेता है और इस वजह से वर्तमान दुनिया की व्याख्या पुराने चौखटे में ही करता है। और यह तमाम किस्म की अन्तरविरोधी व्याख्याओं और कई अन्य किस्म की असंगतता को जन्म देता है, जैसे तीसरी दुनिया के अधिकांश देशों के बारे में वह यह नहीं कहता है कि वे नव-औपनिवेशिक व्यवस्था में नव-उपनिवेश है बल्कि वे नव-औपनिवेशिक व्यवस्था में अर्द्ध उपनिवेश हैं और इन देशों की स्थिति अर्द्धसामन्ती अर्द्ध-औपनिवेशिक की है। ऐसे ही वह कहीं भी स्पष्ट तौर यह नहीं बतलाता कि फलाना देश किस साम्राज्यवादी देश का नव उपनिवेश है या कैसे लेनिन द्वारा गिनायी गयी साम्राज्यवाद की पांचवीं विशेषता कि साम्राज्यवादी शक्तियों ने पूरी दुनिया का क्षेत्रीय (भौगोलिक) बंटवारा कर लिया है, आज लागू होती है कि नहीं। यदि यह विशेषता लागू होती है तो किस साम्राज्यवादी शक्ति के पास कितने वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र है।

CPRCI (ML) का 'वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति और हमारे कार्यभार', (Resolution of the Central Committee, CPRCI (ML), on the Present International Situation and our Tasks, सितम्बर 1996) नामक दस्तावेज निम्न महत्वपूर्ण बातों को नोटिस में लेता है; चीन में पूंजीवादी पुनर्स्थापना, सोवियत सामाजिक साम्राज्यवाद का पतन तथा साम्राज्यवादी प्रतिद्वन्द्विता में अमेरिकी साम्राज्यवाद का कमजोर विजेता के रूप में उभरना, अन्तर साम्राज्यवादी अंतर्विरोधों का संक्रमणकालीन अवस्था में होना तथा उनके बीच कलह के स्थान पर सांठ-गांठ का प्रमुख होना तथा विकसित पूंजीवादी देशों में सर्वहारा और पूंजीपति वर्ग के बीच के अन्तरविरोध तथा प्रमुख बुनियादी अन्तरविरोध साम्राज्यवाद तथा उत्पीड़ित जनता के बीच के अन्तरविरोध का तीखा होते जाना।

यहां CPRCI (ML) एक महत्वपूर्ण कार्य, 1963 की आम दिशा में गिनाये गये बुनियादी अंतर्विरोधों के सन्दर्भ में यह करता है कि वो चौथे बुनियादी अंतरविरोध साम्राज्यवादी खेमे और समाजवादी खेमे के बीच के अंतरविरोध को नहीं गिनाता है। भारत में कई कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठन पण्डितों के श्लोकों की तरह उसे दुहराते रहते हैं और इस अन्तरविरोध की सूफीयाना ढंग से व्याख्या करते हैं। CPRCI (ML) यहां पर निष्ठुर सच्चाई को स्वीकार कर साहसिक वैज्ञानिक ढंग का परिचय देता है। यही द्वन्द्वात्मक ऐतिहासिक भौतिकवादी पद्धति है।

यह सकारात्मक कदम उठाने के बावजूद CPRCI (ML) साम्राज्यवाद की समग्र व्यवस्था में आ रहे परिवर्तनों को नोटिस में नहीं लेता है तथा उसके निहितार्थ नहीं निकालता है। आज औपनिवेशिक और नव औपनिवेशिक व्यवस्था मूलत: समाप्त हो गयी है और उसके स्थान पर आर्थिक नव औपनिवेशिक दुनिया कायम हो गयी है। यहां पर CPRCI (ML) जड़ दृष्टिकोण का ही परिचय देता है और यही उनकी थीसिस और विश्लेषण में मौजूद विसंगतियों का एक कारण बनता है। CPRCI (ML) उपरोक्त दस्तावेज 'अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति और हमारे कार्यभार' में यह कहता है,

> ''उत्पीड़ित अल्प विकसित देशों के खिलाफ वर्तमान साम्राज्यवादी आक्रमण के कारण इसकी समग्र नव-औपनिवेशिक व्यवस्था में आर्थिक और राजनीतिक अस्थिरता तीव्र गति से बढ़ रही है। विश्व इजारेदार पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं के ठहराव और मंदी का मुख्य भार अंधाधुंध ढंग से एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका की जनता के ऊपर डाला जा रहा है जो पहले से ही अपनी अर्द्ध-सामन्ती अर्द्ध-औपनिवेशिक सामाजिक अस्तित्व की बदतर होती परिस्थितियों के कारण भीषण संकट में है।''

(पृष्ठ- 11, पैरा-12, ' the Comrade' अंक-4)

यह CPRCI (ML) के दुनिया के विश्लेषण का एक प्रातिनिधिक उदाहरण है।

CPRCI (ML) तीसरी दुनिया के विभिन्न देशों को एक ही सामान्य श्रेणी अर्द्ध-सामन्ती अर्द्ध-औपनिवेशिक में रखता है। तीसरी दुनिया की विविधतापूर्ण व जटिल स्थिति को अपने इस विश्लेषण से वह अति सरलीकृत कर देता है । यह अति सरलीकरण वर्तमान दुनिया से कतई बेमेल है। तीसरी दुनिया की स्थिति अत्यन्त जटिल है। इसमें एक तरफ चीन, वियतनाम, उ0 कोरिया जैसे देश हैं जहां एक समय राष्ट्रीय जनवादी क्रांतियां हुयीं, साम्राज्यवाद से पूर्ण विच्छेद करते हुये समाजवाद की स्थापना हुयीं, आज वहां पूंजीवाद की पुनर्स्थापना हो चुकी है तथा ये साम्राज्यवादी विश्व व्यवस्था के अंग बन चुके है तो एक तरफ भारत, ब्राजील, मिस्र, मैकिस्को जैसे अर्थव्यवस्था, जनसंख्या, क्षेत्रफल, औद्योगीकरण आदि दृष्टि से बड़े देश हैं जो विश्व राजनीति में क्षेत्रीय शक्तियों के बतौर दखल रखते हैं तो एक तरफ पेरू, फिलीपीन्स जैसे देश भी हैं तो अभी भी नव उपनिवेश हैं। यानि कि कुल मिलाकर तीसरी दुनिया के देशों को एक सरलीकृत श्रेणी में रखना सच्चाई से मुंह चुराना है तथा ठोस परिस्थितियों का अठोस ढंग से विश्लेषण है। साम्राज्यवाद के लिये पहले से अन्यान्य कारणों से कमजोर देश अफगानिस्तान, रवाण्डा, सोमालिया, इराक पर सैन्य आक्रमण और यहां तक कि कुछ समय के लिये कब्जा आसान हो सकता है परन्तु चीन जैसे देश पर ऐसा आक्रमण या उसे अपने नव उपनिवेश या उपनिवेश में तब्दील करना मुश्किल ही नहीं असम्भव है। चीन जैसे तीसरी दुनिया के देश की हैसियत इसी तथ्य से समझी जा सकती है कि चीन का 1998 में सकल राष्ट्रीय उत्पाद (924 अरब डालर) , कनाडा (581 अरब डालर) , स्पेन (552 अरब डालर) तथा नीदरलैण्ड (389 अरब डालर) जैसी कई अन्य साम्राज्यवादी शक्तियों से अधिक था यद्यपि उसकी प्रतिव्यक्ति आय इनसे काफी कम है। चीन तीसरी दुनिया का एक ऐसा देश है जिसकी अर्थव्यवस्था कई साम्राज्यवादी शक्तियों से भी बड़ी है। CPRCI (ML) को अपने इस सरलीकृत दृष्टिकोण पर विचार करना चाहिये।

इसी तरह यह तीसरी दुनिया के शासक वर्गो को एक ही सामान्य प्रवर्ग-दलाल में रख देता है और इस बात के अन्तर को चिह्नित नहीं कर पाता है कि आज तीसरी दुनिया के शासक दलाल के स्थान पर कनिष्ठ साझेदार हैं। वह यह चिह्नित नहीं कर पाता है कि यह पूंजीपति वर्ग कतई गैर क्रांतिकारी है और प्रतिक्रियावादी है तथा आज तीसरी दुनिया में दलाल और राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग का फर्क मौजूद नहीं है। तीसरी दुनिया का पूंजीपति वर्ग ही आज साम्राज्यवाद का इन देशों में सामाजिक अवलम्ब बना हुआ है। चीन, भारत, ब्राजील के शासकों की हैसियत वही नहीं है जो घाना या मालदीव की है ।

जहां तक तीसरी दुनिया के बुर्जुआ वर्ग के साम्राज्यवाद से अन्तरविरोध का प्रश्न है, वे मौजूद हैं परन्तु उसकी प्रकृति कलह के स्थान पर सांठ-गांठ की है। साम्राज्यवादी और यह देशी पूंजीपति वर्ग मिलकर तीसरी दुनिया की मेहनतकश जनता- मजदूरों और किसानों - का निर्मम शोषण और उत्पीड़न कर रहे हैं। तीसरी दुनिया का पूंजीपति वर्ग अपनी पूंजी की हैसियत के हिसाब से ही वैश्विक अतिरिक्त मूल्य विनियोग में अपना हिस्सा पाता है। इस लिहाज से उसकी हैसियत जूनियर पार्टनर की है।

इसके साथ ही जुड़ा हुआ सवाल तीसरी दुनिया के देशों में अपनी औपनिवेशिक मुक्ति के बाद पूंजीवादी विकास और उसके रास्ते का है। CPRCI (ML) यह मानता है कि साम्राज्यवादी नव औपनिवेशिक व्यवस्था में ये देश अर्द्ध-औपनिवेशिक हैं। अतः इन देशों में पूंजीवादी विकास इस हद तक संभव ही नहीं है कि वे पूंजीवादी देशों में तब्दील हो जायें। क्योंकि दुनिया में साम्राज्यवाद है और इसलिए तीसरी दुनिया के देशों की एक ही स्थिति अर्द्ध-सामन्ती अर्द्ध-औपनिवेशिकता की बनती है। जैसे की हम पहले कह आये हैं कि यह CPRCI (ML) के राजनीतिक स्वाधीनता के सवाल को आर्थिक स्वाधीनता से जोड़ने का नतीजा है कि वो साम्राज्यवाद से तीसरी दुनिया के सम्बन्धों के एक ही रूप की कल्पना करते हैं। जबकि सच्चाई यह है कि साम्राज्यवादी वित्त पूंजी से इन देशों के हजार सूत्रों से बंधे होने और पूंजी के संचरण में, राजनीतिक स्वाधीनता बाधक नहीं है।

फिर यह माना जाता है कि पूंजीवादी विकास क्रांतिकारी ढंग से ही हो सकता है। जबकि मार्क्स और लेनिन ने कई दफा इस बात को रखा है कि पूंजीवादी विकास गैर क्रांतिकारी ढंग से क्रमिक सुधारों के जरिये भी हो सकता है और इसे उन्होंने ''प्रशियाई'' रास्ते की संज्ञा दी है।

हमारे देश के क्रांतिकारी आंदोलन में यह प्रवृत्ति है कि पूंजीवादी विकास के गैर क्रांतिकारी ढंग को मान्यता नहीं दी जाती है और इस तरह से समाज में आने वाले परिर्वतनों से इन्कार कर दिया जाता है और जब कभी इन परिवर्तनों को स्वीकारा भी जाता है तो उसमें ढेर सारे किन्तु-परन्तु लगाये जाते हैं और ऐसी शब्दावली गढ़ी जाती है जिसका अर्थ बहुत ढीला-ढाला और अस्पष्ट होता है। इसकी वजह होती यह है कि यथार्थ कुछ और कह रहा होता है और आप अपनी धारणाओं के बन्दी होने के कारण कुछ और कहने को बाध्य हैं।

इसी तरह साम्राज्यवादी पूंजी के एक ही प्रधान पहलू की चर्चा की जाती है कि वो तीसरी दुनिया का शोषण कर रही है उसके गौण पहलू कि वो तीसरी दुनिया में पूंजीवादी विकास (जो कि असंतुलित और असमान ही होता है) भी करती है, भुला दिया जाता है और उससे निष्कर्ष निकालने से बचा जाता है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद इन नव स्वाधीन देशों के शासकों ने अपने-अपने देश में पूंजीवादी विकास का रास्ता अपनाया। रेडीकल ढंग से लेकर क्रमशः सुधारों के जरिये कृषि सम्बन्धों को पूंजीवाद के मातहत लाया गया। इन नव स्वाधीन देशों ने अपनी आजादी के सुदृढ़ीकरण तथा पूंजीवादी विकास के लिये पहले समाजवादी खेमे और साम्राज्यवादी खेमे के बीच के अन्तरविरोध का तथा बाद के समय में सोवियत साम्राज्यवादी और अमेरिकी साम्राज्यवादियों के बीच की प्रतिद्वन्द्विता का लाभ उठाया। अपने घरेलू बाजार का निर्माण कर तथा उन्हें संरक्षण देकर तथा विभिन्न किस्म के आयात-निर्यात पर प्रतिबन्ध लगाये। कुल मिलाकर, साम्राज्यवाद से सीमित अलगाव का रास्ता अपनाकर अपने-अपने देशों में पूंजीपति वर्ग ने पूंजीवादी विकास का रास्ता अपनाया तथा अपने आधार को विकसित किया। अपनी सामूहिक संस्थायें खड़ी करके इन देशों के शासकों ने साम्राज्यवाद से सौदेबाजी की और इन देशों में पूंजीवाद के विकास में साम्राज्यवादी पूंजी ने भी गौण ही सही एक भूमिका निभायी।

CPRCI (ML) पूंजीवादी विकास के सवाल को लेनिन द्वारा 'रूस में पूंजीवाद का विकास (Development of Capitalism in Russia) ' नामक पुस्तक में प्रस्तुत प्रस्थापनाओं की कसौटी में कसने के बजाय साम्राज्यवादी शोषण-उत्पीड़न तथा तीसरी दुनिया के शासकों की भूमिका की लानत

–मलानत तक ही अपने को सीमित रखता है। इससे यह होता है कि आप यथार्थ के अनुरूप अपने कार्यभार तय नहीं कर पाते है और यथार्थ में आ उपस्थिति होने वाले कार्यभार आपके कार्यक्रम, रणनीति और रणकौशल की सीमाओं को लांघ जाते हैं। ये विसंगतियां आम हो जाती हैं और किसी तरह से भी ये पुराने चौखटे में समायोजित नहीं हो पाती हैं।

इसी बात की बानगी CPRCI (ML) के 'अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति और हमारे कार्यभार' नामक दस्तावेज में तीसरी दुनिया के सैन्यीकरण के सवाल पर दिखायी देती है। जिसमें वे दलाल के अपने मालिक से इस बात के लिये संघर्ष की बात करते हैं कि दलाल अपने आधार की रक्षा के लिये राष्ट्र वादी तेवर अपना लेता है। CPRCI (ML) के शब्दों में,

> ''अपनी बारी में , तीसरी दुनिया की हुकूमतें (regimè) कई बार साम्राज्यवादी निर्देशों के खिलाफ अल्पकाल के लिये, यदि उनके सामाजिक आधार के खत्म होने, वर्गीय हितों के खतरे में पड़ने तथा उनके अस्तित्व पे सवाल खड़े होने पर वे रक्षात्मक मुद्रा अपनाने को बाध्य होंगी, इसके लिए इन हुकूमतों को अपनी उत्पीड़ित जनता के राजनीतिक भौतिक समर्थन की जरूरत होगी।''
>
> (Page-14, पैरा–2, 'the Comrade' अंक–4)

इस उद्धरण में उसी तरह की विसंगति मौजूद है जिसकी ओर हम इशारा कर रहे थे । दलाल की ऐसी किसी भूमिका की बात कामरेड माओ ने कहीं नहीं कही थी। यह उद्धरण तीसरी दुनिया के देशों की अपेक्षाकृत स्वतंत्रता की ओर इशारा करने लगता है।

जिस हिस्से से हमने उपरोक्त उद्धरण लिया है उसी हिस्से में CPRCI (ML) साम्राज्यवादियों द्वारा तीसरी दुनिया के देशों के सैन्यकरण की बात करता है। साम्राज्यवादी हितों को तीसरी दुनिया में साधने के लिये साम्राज्यवादी शक्तियों तथा उनके हथियार उद्योगों में प्रतिद्वन्द्विता, तीसरी दुनिया के देशों के शासकों की सेनाओं की घरेलू तथा बाहरी दुनिया में भूमिका ऐसी वजहें हैं जिसके कारण साम्राज्यवाद तीसरी दुनिया के देशो को सैन्यीकृत कर रहा है। तीसरी दुनिया के इस तरह के सैन्यीकृत होने में साम्राज्यवाद के लिये यह खतरा है कि तीसरी दुनिया की उच्च तकनीक वाले हथियारों में पकड़ मजबूत होगी तथा साम्राज्यवाद के लिये उन्हें ब्लैकमेल (Black Mail) करना मुश्किल होगा । साम्राज्यवाद ऐसी अन्तरविरोधी स्थिति में न फंसे इसलिए वो चाहता है कि तीसरी दुनिया के देश परम्परागत हथियारों तक ही सीमित रहें। साम्राज्यवादी अपने अभियानों के लिये अपनी फौज के स्थान पर तीसरी दुनिया के देशों की फौज का इस्तेमाल इसलिये करना चाहते हैं कि उनके सिपाहियों की मौत होने पर उन्हें अपने देशों में जनता के व्यापक हिस्से द्वारा आलोचना का शिकार ना होना पड़े। CPRCI (ML) के इस विश्लेषण में साम्राज्यवाद के दलाल से रिश्तों के शास्त्रीय अर्थ को जैसे ही प्रवेश कराते है वैसे ही तमाम विसंगतिया एक साथ उजागर हो जाती हैं। कनिष्ठ साझेदार की तीसरी दुनिया के शासकों की, आज की हैसियत से जोड़कर देखने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनके अपने हित और महत्वाकांक्षायें भी एक बड़ी वजह बनती हैं। जिसके कारण भारत जैसे देश के शासक अपनी फौजों को संयुक्त राष्ट्र संघ के मिशन के तहत सोमालिया, सियरा लोन या अन्य देशों में भेजते हैं।

साम्राज्यवाद से जुड़े हुये सवालों के अन्त में आज की दुनिया में कार्यरत बुनियादी अंतरविरोधों के सवाल को हम उठाने चाहेंगे। प्रधान अंतरविरोध के सवाल पर CPRCI (ML) की अवस्थिति को

हम गलत समझते हैं। CPRCI (ML) के अनुसार तीन बुनियादी अंतरविरोधों की स्थिति इस प्रकार है :

> ''...आज, साम्राज्यवाद और उत्पीड़ित जनता व राष्ट्रों के बीच का प्रधान अन्तरविरोध और गहराया है तथा पूंजीवादी राष्ट्रों में सर्वहारा और पूंजीपति के बीच का अन्तरविरोध तीखा हुआ है जबकि अन्तर-साम्राज्यवादी अन्तरविरोध फिलहाल मद्धिम ढंग से अभिव्यक्त हो रहा है।....''
>
> (पेज-3, पैरा-2, 'the Comrade' अंक-4)

इस सन्दर्भ में हमारा कहना है कि आज दुनिया के पैमाने में मौजूद सभी अंतरविरोधों में प्रधान अंतरविरोध श्रम और पूंजी का अंतरविरोध है और इस अंतरविरोध के हल होने पर ही दुनिया में बुनियादी परिवर्तन आयेंगे तथा अन्य अंतरविरोध भी हल होंगे। इस श्रम और पूंजी के बीच के अंतरविरोध के दो हिस्से हैं। पहला, साम्राज्यवादी देशों में श्रम और पूंजी के बीच तथा दूसरा, तीसरी दुनिया में श्रम और पूंजी के बीच । CPRCI (ML) साम्राज्यवाद और उत्पीड़ित जनता व राष्ट्रों के बीच के अंतरविरोध को प्रधान अंतरविराध मानती है, हमारे हिसाब यह आज की दुनिया की गलत व्याख्या है क्योंकि यह अंतरविरोध आज तभी हल हो सकता है जबकि श्रम और पूंजी के बीच का प्रधान अंतरविरोध हल होने की ओर बढ़े यद्यपि यह हमारे हिसाब से भी बुनियादी अंतरविरोध है। तीसरे बुनियादी अंतरविरोध साम्राज्यवादियों के बीच का आपसी तथा इजारेदारियों के बीच का आपसी अंतरविरोध आज उतना तीखा नहीं है जितना कि वह सत्तर व अस्सी के दशक में था। प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध इस अंतरविरोध के अत्यन्त तीखे होने की अभिव्यक्ति थे। सत्तर व अस्सी के दशक में सोवियत साम्राज्यवाद के साथ अमेरिकी साम्राज्यवाद का अंतरविरोध तीखा था तथा तत्कालीन दुनिया को गति दे रहा था। सोवियत साम्राज्यवाद के पतन के बाद कुछ समय तक अमेरिकी साम्राज्यवाद का वर्चस्व पिछली सदी के अंतिम दशक के शुरूवाती वर्षो में कायम रहा। नब्बे के दशक का अंत होते-होते साम्राज्यवादियों के प्रमुख चार धड़ों (अमेरिका, यूरोपीय यूनियन, जापान और रूस) के बीच तीखी प्रतिद्वन्द्विता के रूप में यह पुनः परिलक्षित होने लगा है। इराक के सवाल पर फ्रांसिसी, जर्मनी व रूसी साम्राज्यवाद के अमेरिकी साम्राज्यवाद से अन्तरविरोध खुले ढंग से अभिव्यक्त हुय। WTO की बैठकों में आया गतिरोध भी इसी अन्तरविरोध की एक अन्य अभिव्यक्ति है।

साम्राज्यवादियों की आपसी तीखी प्रतिद्वन्द्विता अभी आर्थिक क्षेत्र में अधिक है और यह अभी सामरिक युद्ध के स्तर पर ना तो पहुंची है और ना फिलहाल इसकी सम्भावना है।

साम्राज्यवाद और भारत

साम्राज्यवाद और भारत के सम्बन्धों में चर्चा करने की सुविधा की दृष्टि से विगत इतिहास को हम तीन चरणों में बांट सकते हैं। पहला, भारत का औपनिवेशिक काल (सन् 1947 से पहले) दूसरा, सत्ता हस्तांतरण और उसके बाद का काल ('47 से '91 तक) तथा तीसरा, 1991 के बाद का काल।

CPRCI (ML) साम्राज्यवाद के साथ भारत के सम्बन्धों में आये परिवर्तनों को इस तरह से अभिव्यक्त करता है:

> ''मध्य अठारहवीं सदी में, सामन्ती भारत में जब ब्रिटिश पहले आये, तब वे उस समय की अन्य यूरोपीय शक्तियों की तरह लूट और वाणिज्य के लिये आये। समय के साथ-साथ उनका खुद का पूंजीवादी विकास उनकी औपनिवेशिक महत्वाकांक्षाओं और कूटनीति को भारत में तय करते हुये, मुख्यत: तीन कालखण्डों : साम्राज्यवाद पूर्व औपनिवेशिक काल, साम्राज्यवादी औपनिवेशिक काल और साम्राज्यवादी नव औपनिवेशिक काल में विभक्त कर रहा था।''

(पृष्ठ-1.2, 'Programme for People's Democratic Revolution In India')

जहां तक आधुनिक भारतीय इतिहास को तीन काल खण्डों में बांटने और उससे निष्कर्ष निकालने का सवाल है तो हमारा कहना है कि CPRCI (ML) द्वारा बांटे गये पहले दो कालखण्डों से हम मोटा-मोटी सहमत है यद्यपि जैसे ही इन दो कालखण्डों में घटी घटनाओं के गहराई में जाने और उनके निहितार्थ निकलने का प्रश्न उठेगा तो हमारे कई मतभेद उजागर हो जायेंगे, मसलन कांग्रेस, बुर्जुआ वर्ग, राष्ट्रीय आन्दोलन इत्यादि का चरित्र और भूमिका। परन्तु तीसरे कालखण्ड से हम असहमत हैं क्योंकि यह एक बुनियादी मतभेद है। मतभेद यह है कि राजनीतिक स्वाधीनता को क्या आर्थिक स्वाधीनता से जोड़ जाना चाहिये। इस विषय पर अवधारणागत बातें हम पहले ही कर चुके हैं अत: उन्हें हम यहां पर नहीं दोहरायेंगे।

CPRCI (ML) आजादी के आंदोलन और उस वक्त की विश्व परिस्थिति की चर्चा करते हुये इस बात को तो नोटिस में लेता है कि भारत साम्राज्यवाद से नये नव- औपनिवेशिक सम्बन्धों में बंध गया परन्तु वह किसी किस्म की राजनीतिक स्वाधीनता तथा साम्राज्यवाद से अलगाव या भारतीय शासक वर्ग के चरित्र में आये फर्क को महसूस नहीं करता है। CPRCI (ML) 1947 में हुये सत्ताहस्तांतरण को इसी रूप में लेता है कि भारत में प्रत्यक्ष के बजाय अप्रत्यक्ष शासन कायम हो गया कि भारत ब्रिटेन के उपनिवेश से साम्राज्यवादियों के नये तरह के अर्द्धउपनिवेश में तब्दील हो गया कि ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के स्थान पर सत्ता साम्राज्यवादियों के दलाल पूंजीपति वर्ग और जमींदार वर्ग के हाथ में आ गयी। CPRCI (ML) की सोच और पहुंच (approach) की जड़ता और दायरा फिर यहां प्रकट हो जाता है। यथार्थ में घटी घटनायें यक्ष प्रश्न बनकर खड़ी हो जाती है और इस मौके पर कुछ साहित्यिक चिन्ह और कुछ भावनात्मक बातें जड़ दृष्टिकोण की सेवा में आ उपस्थित होती हैं। जैसे, भारत की आजादी की लड़ाई में दूसरे विश्वयुद्ध और उसके बाद के समय में आये जनउभार की चर्चा की जाती है और यह जनउभार ऐसा होता है कि ब्रिटिश शासकों को भारत की सत्ता छोड़ने को बाध्य कर देता है परन्तु क्योंकि कोई क्रांति नहीं हुयी इसलिए स्वतंत्रता कैसे वास्तविक हो सकती है और भारतीय बुर्जुआ ने कोई क्रांतिकारिता का परिचय नहीं दिया तो वो कैसे एक दलाल बुर्जुआ से हटकर हो सकता है। क्योंकि क्रांति हुयी नहीं तो साम्राज्यवाद का प्रभाव कम या अलगाव कैसे कम हो सकता है यद्यपि CPRCI (ML) भी मानता है कि सन् 1947 में ऐसा कुछ घटा जिसने साम्राज्यवाद को अपने रूप में बदलाव करने को बाध्य होना पड़ा। जिस ढंग से व्याख्या की जाती है उसमें प्रत्यक्षत: और परोक्षत: में कोई फर्क नहीं रह जाता है। CPRCI (ML) के सारे विश्लेषण से यह ध्वनित होता है कि रूप में परिवर्तन तो हो गया लेकिन सार (content) में कोई परिर्वतन नहीं हुआ। एक मार्क्सवादी होने के नाते हम सवाल करना चाहेंगे कि क्या ऐसा

सम्भव है कि रूप में बदलाव हो जाये परन्तु सार वही का वही रहे । क्या आजादी की लड़ाई के दौरान तथा सत्ता हस्तांतरण के दौरान तथा उसके बाद भी भारतीय समाज में अर्द्ध-सामन्तवाद वैसा का वैसा ही बना रहा है। इस सवाल का जवाब हम एक जोरदार नहीं में तो देंगे ही लेकिन CPRCI (ML) अपने सभी दस्ताावेजों में लम्बे-चौड़े विवरणों तथा समाज में घट रही घटनाओं को नोटिस में लेते हुये ऐसी हां में देता है जिससे नहीं की ध्वनि निकलती है। फिलहाल, आइये देखते हैं कि भारत में सत्ता हस्तांतरण कैसे हुआ तथा ''औपचारिक स्वतंत्रता'' कैसे हासिल हुयी। CPRCI (ML) के शब्दों में ,

> ''भारत के ब्रिटिश शासकों ने, यह देखते हुये कि एक महान जनउभार उन्हें साफ कर सकता है, शीघ्रता से सत्ता का हस्तांतरण दलाल बुर्जुआ और जमींदार वर्ग को कर दिया।
>
> ''जनता के क्रांतिकारी उभार के मुख्य कारक के साथ, अमेरिकी साम्राज्यवादियों के दबाव ने ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के भारत के प्रत्यक्ष औपनिवेशिक कब्जे को त्यागने में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।
>
> ''परिणामस्वरूप ब्रिटिश शासकों ने भारत को छोड़ दिया; ब्रिटिश इजारेदार पूंजी ज्यों की त्यों बनी रही । 1947 में भारतीय संघ की जो नयी सत्ता अस्तित्व में आयी वह सत्ता दलाल बुर्जुआ और जमींदार वर्ग की थी जो कि सामान्य तौर पर साम्राज्यवाद और विशिष्ट तौर पर घरेलू अर्द्ध-सामन्तवाद के हितों की सेवा और रक्षा कर रही थी। भारत की ''स्वतंत्रता'' औपचारिक थी। और अब तक भी बनी हुयी है।''
>
> (पैरा-3,4,5, पृष्ठ-6, वही)

और आगे,

> '' 1ण्3 इस तरह, ''स्वतंत्रता'' या ''सत्ता हस्तांतरण'' ने कुल मिलाकर राज में मुख्य तौर पर ब्रिटिश उपनिवेशवादियों के देशी, संश्रयकारियों को स्थापित किया और भारत को ब्रिटिश उपनिवेश से मुख्य साम्राज्यवादी शक्तियों के एक नये तरह के अर्द्ध-उपनिवेश में बदल दिया जबकि अर्द्ध-सामन्ती सामाजिक चरित्र को बनाये रखा।''
>
> (पृष्ठ 8, वही)

और ऐसे ही,

> '' 2. सत्ता हस्तांतरण के बाद के वर्षो में अर्द्ध-सामन्ती अर्द्ध-औपनिवेशिक के सभी मूल तत्वों को सुरक्षित करते हुये सामाजिक-आर्थिक संगठन के ये रूप विविध होते और बदलते गये। वास्तव में, सभी सरकारी रणनीतियों और कदमों के मूल में वित्तीय पूंजी के चौतरफा बढ़ते नियंत्रण के नीचे अर्द्ध-सामन्ती कृषि सम्बन्धों को सुरक्षित बनाये रखना है''।
>
> (पृष्ठ- 8.9, वही)

CPRCI (ML) यह तो मानता है कि भारत में उठ रहा जनउभार साम्राज्यवाद और फासीवाद के खिलाफ उठ रहे विश्वव्यापी क्रांतिकारी जनउभार का अभिन्न हिस्सा था। परन्तु वो समाजवादी

क्रांतिकारी आंदोलन और उसके कारण राष्ट्रीय मुक्तिधारा के वेगवान होने तथा उसकी भौतिक और नैतिक उपस्थिति कैसे भारतीय आजादी की लड़ाई, सत्ता हस्तांतरण और ब्रिटिश साम्राज्यवादियों को भारत छोड़ने को बाध्य करने में बड़ी भूमिका निभा रही थी कि चर्चा नहीं करता है। यहां जो बात गौर करने की है वह यह है कि CPRCI (ML) ब्रिटिश साम्राज्यवाद पर अमेरिकी साम्राज्यवाद के दबाव की चर्चा सामान्य से हटकर विशिष्ट ढंग से करता है परन्तु वो समाजवाद की भूमिका को इस सन्दर्भ में सही ढंग से रेखांकित नहीं करता है।

बीसवीं सदी के चालीस और पचास के दशक पूरे वैश्विक इतिहास की दृष्टि से युगान्तरकारी रहे हैं, हालांकि इसकी सुदृढ़ व शानदार नींव 1917 की सोवियत संघ की अक्टूबर क्रांति ने रख दी थी (हालांकि महान अक्टूबर क्रांति तथा समाजवादी योजनाबद्धता के महत्व को इसी दस्तावेज में एक स्थान पर एक विशिष्ट सन्दर्भ में स्वीकारा है) । साम्राज्यवाद पर आगे और पीछे दोनों तरफ से इन दशकों में हमला बोला जा रहा था। समाजवाद आगे से सीधी व स्पष्ट चुनौती दे रहा था तो राष्ट्रीय मुक्ति के आंदोलन की प्रबल धारा साम्राज्यवाद के पिछवाड़े को तीव्र गति से उजाड़ रही थी। समाजवाद की भौतिक और नैतिक उपस्थिति साम्राज्यवाद के लिये प्रलयकारी थी। इस बात पर हमारे जोर देने की वजह साफ इसलिए है कि इसी समाजवाद की उपस्थिति ने भारत के नवोदित शासकवर्ग को साम्राज्यवाद से राजनीतिक स्वाधीनता दिलाने तथा उसको सुदृढ़ करने में बहुत बड़े वाद्य कारक के बतौर कार्य किया । यहां यह गौर करने की जरूरत है कि भारत का नवोदित शासक वर्ग जिन्हे साम्राज्यवाद का दलाल समझा जाता है, साम्राज्यवाद के खिलाफ जनता की जनवादी क्रांति करते हुये कायम चीन के जन लोक गणराज्य को 1949 में मान्यता देने वालों में एक था और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी भी भारत को नव स्वाधीन देश के रूप में चिह्नित करती थी। नवोदित भारतीय शासक वर्ग जैसे-जैसे अपनी राजनीतिक आजादी को औपचारिक से वास्तविक में बदलता गया वैसे-वैसे ऐसी तमाम घटनायें घटीं। वास्तव में, समाजवाद ऐसे सभी नव स्वाधीन देशों का बहुत बड़ा अवलम्ब साबित हुआ था। इस बात को आज अधिक तीव्रता से महसूस किया जा सकता है जबकि समाजवाद की भौतिक अनुपस्थिति साम्राज्यवाद की आक्रामकता को बढ़ा रही है और तीसरी दुनिया के शासकों की साम्राज्यवाद से बढ़ती सांठगांठ के कारण तीसरी दुनिया की जनता के शोषण व उत्पीड़न को तीव्रता से बढ़ा रही है।

अब हम संक्षेप में भारत की सन्'47 से लेकर अब तक की यात्रा की चर्चा करेंगे। इसे हम मोटे तौर पर तीन कालखण्डों में बांट कर देखते हैं।

पहला कालखण्ड, 1947 से 1954-55 का जिसे औपनिवेशिक प्रतिछाया से बुर्जुआ मुक्ति का दौर कहा सकता है जिसमें भारतीय पूंजीपति वर्ग ने राजनैतिक आजादी को सुदृढ़ करने के लिये अनेक राजनैतिक व आर्थिक कदम उठाये।

दूसरा कालखण्ड, 1955-56 से 1990-91 का है जिसमें भारतीय पूंजीपति वर्ग ने संरक्षित राष्ट्रीय बाजार का निर्माण किया तथा अपने आधार का विस्तार किया। साम्राज्यवादी अन्तर प्रतिद्वन्द्विता का लाभ उठाया तथा कृषि का सुधारों के जरिये पूंजीवादीकरण किया।

तीसरा कालखण्ड, 1991 से आज तक जिसमें भारतीय पूंजीपति वर्ग ने मुक्त बाजार पूंजीवाद को अपनाया। भारतीय अर्थव्यवस्था का साम्राज्यवाद के साथ एकीकरण का बढ़ना तथा भारतीय बुर्जुआ वर्ग की साम्राज्यवाद के साथ बढ़ती सांठ-गांठ इस कालखण्ड की विशेषता है।

यहीं पर यह बात हम स्पष्ट करना चाहेंगे कि भारतीय पूंजीपति वर्ग ने विश्व पूंजीवादी व्यवस्था के भीतर ही पूंजीवादी विकास का रास्ता चुना और इन अर्थों में साम्राज्यवाद से अलगाव के विभिन्न स्तरों के बावजूद भारतीय अर्थव्यवस्था साम्राज्यवाद के प्रभाव व दबाव में रही। पहले समाजवादी सशक्त खेमें की उपस्थिति फिर सामाजिक-साम्राज्यवादी खेमे से अमेरिकी साम्राज्यवादी खेमे की साम्राज्यवादी अन्तर प्रतिद्वन्द्विता ने भारतीय शासक वर्ग को इस बात का अवसर उपलब्ध कराया जिससे वह तत्कालीन विश्व परिस्थिति में अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता को बरकरार रखते हुये भारतीय समाज का क्रमशः सुधारों के जरिये पूंजीवादीकरण करता चला गया तथा अपने आधार को व्यापक और मजबूत करता गया। संरक्षित राष्ट्रीय बाजार के निर्माण के दौर में भारतीय अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में भारतीय पूंजीपति ने विश्व साम्राज्यवादी व्यवस्था के भीतर एक हद तक अलगाव (autarky) कायम की और इस पूंजीवादी रास्ते के जो भयावह परिणाम भारतीय समाज में निकलने थे, वो आज हमारे सामने हैं। आज भारतीय पूंजीवाद और विश्व साम्राज्यवाद भारतीय जनता के मुख्य दो शत्रु हैं।

भारतीय समाज मूलतः एक पूंजीवादी समाज बन चुका है जिसमें सामन्ती अवशेष बचे हुये हैं तथा यह साम्राज्यवाद के साथ आर्थिक नव औपनिवेशिक सम्बन्ध में बंधा हुआ है। भारतीय शासक वर्ग साम्राज्यवाद का दलाल न होकर उसका वैश्विक अतिरिक्त मूल्य विनियोग में कनिष्ठ साझेदार है।भारत के भीतर इसकी हैसियत वरिष्ठ साझेदार की है। यह पूंजीपति वर्ग ही आज भारत में साम्राज्यवाद का सामाजिक अवलम्ब है। शहरी-देहाती, इजारेदार-गैर इजारेदार आदि फर्क होने के बावजूद इस वर्ग में दलाल-राष्ट्रीय का कोई फर्क नहीं है।

CPRCI (ML) भारत के पिछले पचास साल के इतिहास तथा वर्तमान परिस्थिति की चर्चा करता है तो बार-बार यही सूत्रित करता है कि भारत साम्राज्यवादी नव औपनिवेशिक व्यवस्था में अर्द्ध-सामन्ती अर्द्ध-औपनिवेशिक देश है। क्योंकि पचास साल में भारत की अर्थव्यवस्था तथा समाज में व्यापक परिवर्तन हुये हैं जो CPRCI (ML) के भारतीय समाज विश्लेषण के दायरे को लांघ जाते हैं तो CPRCI (ML) को शब्दों की बाजीगरी ऐसे दिखानी होती है कि वो नयी घटी घटनाओं को नोटिस में भी ले सके लेकिन नव औपनिवेशिक व्यवस्था में भारत अर्द्ध-सामन्ती अर्द्ध-औपनिवेशिक की अपनी मूल प्रस्थापना को छोड़े भी नहीं। '90 के दशक के परिवर्तन इतने ज्यादा हैं कि CPRCI (ML) भारतीय शासकों की नीतियों की आलोचना तीखे ढंग से करता है परन्तु इस बात को रेखांकित नहीं कर पाता है कि दोनों ही दौर (संरक्षित राष्ट्रीय बाजार के निर्माण तथा उसके बाद मुक्त बाजार का दौर) में पूंजीपति वर्ग जो कि भारत का शासक वर्ग है के वर्गीय हित ही इनके मूल में हैं। अलगाव और एकीकरण, कलह और सांठ-गांठ को पूंजीपति वर्ग के हित ही निर्धारित करते रहे हैं।

CPRCI (ML) ' जीम Comrade' के विभिन्न अंकों में और 'भारत की वर्तमान परिस्थिति और हमारे कार्यभार' नामक दस्तावेज में भारत की वर्तमान स्थिति की चर्चा करता है तो ऐसी ही तमाम किस्म की असंगतता का परिचय देता है । इस असंगतता को दूर करने के लिये वो इन शब्दों ''दलाल रिश्ते के नये रूपों (New forms of comprador relations), ''वाणिज्यीकरण'' (commercialisation) आदि का प्रयोग करता है। इसी तरह जब वह नव औपनिवेशिक सम्बन्धों की चर्चा करता है तो उसका जोर साम्राज्यवादी वित्तीय पूंजी के बढ़ते आक्रमण व प्रभाव पर अधिक होता है जबकि नव औपनिवेशिक सम्बन्धों में किसी देश की राजनीति में साम्राज्यवादियों की दखलंदाजी इस

हद तक होती है कि वहां के शासकों को साम्राज्यवाद की कठपुतली बोला जाता रहा है। CPRCI (ML) के शब्दों में,

> '' 3. साम्राज्यवाद भारत में विभिन्न प्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष रूपों - ऋृण, सहायता और प्रत्यक्ष निवेश के मुख्य रूपों के साथ यहां तक कि तकनीक -निर्यात के रूप में भी वित्तीय पूंजी को निर्यात कर रहा है। पूंजी-निर्यात के नये रूपों को ईजाद करने के लिये काम किया जा रहा है ताकि उसकी वास्तविक प्रकृति पर पर्दा डाला जा सके और जनता को धोखा दिया जा सके । भारतीय शासक वर्गो ने साम्राज्यवाद के साथ दलाल-सम्बन्धों के एकदम नये रूपों को अपनाते हुऐ छुपे ढंग से हाथ मिलाया हुआ है ताकि विदेशी वित्तीय पूंजी से पाटे जाने को यहां सुगम बनाया जा सके। इसी का नतीजा यह है विदेशी वित्तीय पूंजी भारतीय अर्थव्यवस्था की जीवन-रेखा को नियंत्रित करती है और भारतीय जनता के दैनिक आर्थिक जीवन को बढ़ते हुये शक्तिशाली प्रभाव से काबू करती है। इस रूप में, साम्राज्यवाद उन्नत तकनीक पर अपनी एकछत्र पकड़ और भारतीय अर्थव्यवस्था की अपने पर निर्भरता को भारत पर नव-औपनिवेशिक प्रभुत्व बनाये रखने और बढ़ाने के लिये, एक मुख्य औजार की तरह इस्तेमाल करता है। वास्तव में, उन्नत तकनीक पर थोपी गयी निर्भरता का मामला विदेशी वित्तीय पूंजी द्वारा भारत को नियंत्रित करने का तरीका है।'' (पृष्ठ-11, पैरा -3, वही)

CPRCI (ML) भारत की वर्तमान स्थितियों की चर्चा करते हुये वर्तमान संकट को नव औपनिवेशिक व्यवस्था में भारत के अर्द्ध-सामन्ती, अर्द्ध-औपनिवेशिक होने को ठहराता है,

> ''भारत, नव औपनिवेशिक व्यवस्था के हिस्से के तौर पर, वर्तमान विश्वव्यापी साम्राज्यवादी बहुमुखी आक्रमण के द्वारा विध्वंस होने की प्रक्रिया में है। इस चौतरफा आक्रमण ने हमारे देश की महिलाओं और पुरूषों के आर्थिक, सामाजिक, वैचारिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन को अपने आगोश में ले लिया है। साम्राज्यवादी संकट जैसे -जैसे गहराता जा रहा है यह साथ-साथ भारत के अर्द्ध-सामन्ती, अर्द्ध-औपनिवेशिक व्यवस्था के पहले से ही मौजूद संकट को असहनीय ढंग से तीखा करता जा रहा है।'' (पेज-1, पैरा-I, Resolution of the C.C. CPRCI (ML), on the Present National Situation and our Tasks, दिसम्बर 1996 ' the Comrade' के अंक-5 में प्रकाशित)

उपरोक्त उद्धरण एक ऐसा उद्धरण है जो 1996, 1980, 1976, 1963, 1955, 1950 के किसी भी समय में भी अगर CPRCI (ML) भारत की परिस्थिति का विश्लेषण करती तो ज्यों का त्यों रहता। यह एक पृष्ठभूमि के बतौर वेद वाक्य है। अब जो भी नयी घटनायें-परिघटनायें घटती हैं, उन्हें इसी पृष्ठभूमि में अध्यारोपित कर दिया जाता है चाहे वे असंगत दिखें या अतार्किक लगें।

ऐसी ही एक बानगी भारतीय शासक वर्ग की गुट निरपेक्षता की नीति को लेकर देखी जा सकती है। CPRCI (ML) हमें बताता है कि इस नीति के द्वारा साम्राज्यवाद का दलाल अपनी निष्ठा विभिन्न साम्राज्यवादियों के बीच बदलता रहा है। उन्हीं के शब्दों में,

'' 6.2 भारतीय राज्य द्वारा अपने विदेशी मामलों में 'गुट निरपेक्षता'' का ढोंग उसी तरह से आधारहीन है जैसे कि घरेलू मामलों में ''संसदीय लोकतंत्र'' है। गुट निरपेक्षता की भंगिमा तथापि भारतीय राज्य के साम्राज्यवादी ताकतों के शक्ति सन्तुलन में से प्रमुख साम्राज्यवादी शक्तियों में अपनी वफादारी सापेक्षत: बदल या स्थानान्तरित कर सकने में सहायक सिद्ध हुयी है। साथ ही उसी समय यह उसे तीसरी दुनिया के नेता के रूप में प्रस्तुत करने में सहायक सिद्ध हुयी है तथा इससे क्षेत्रीय स्तर पर टुच्चे वर्चस्व की लड़ाई में चालबाजी कर सके हालांकि इसकी परिधि साम्राज्यवादियों द्वारा ही निर्धारित होती है।(पृष्ठ-17, पैरा-3, Programme for People's Democratic Revolution in India)

यही चर्चा हमें CPRCI (ML) के दस्तावेजों में देखने को मिलती है जब वे भारतीय कृषि की चर्चा करते हैं। एक तरफ भारत बड़े पूंजीपति वर्ग अर्थात्दलाल-नौकरशाह पूंजीपति वर्ग का सामाजिक आधार अर्द्ध-सामन्तवाद है और वो इसको बनाये रखने का प्रयास करता है तो दूसरी तरफ पूंजी की घुसपैठ कृषि में ''वाणिज्यीकरण'' कर रही है और किसान आबादी में ''विभेदीकरण'' को बढ़ा रही है। इस विसंगति को उजागर करने के लिए हम CPRCI (ML) के दस्तावेजों मे से कुछ हिस्सों को उद्धृत करेंगे।

भारतीय दलाल के भारतीय समाज में आधार की चर्चा करते हुये वह कहता है।,

''भारतीय बड़े पूंजीपति वर्ग (अर्थात्दलाल नौकरशाह पूंजीपति वर्ग) का भी सामाजिक आधार अर्द्ध-सामन्तवाद है। साम्राज्यवादी अर्थव्यवस्थाओं से दासत्व ढंग से बंधे हुए वर्ग को वस्तुगत रूप से इस बात की आवश्यकता नहीं है कि वो कृषि को अर्द्ध-सामन्तवाद से आजाद करे या परिवर्तित करे....'' (पृष्ठ-12, तीसरा पैरा, Programme For People's Democratic Revolution In India)

वहीं जब वो भारतीय कृषि की वर्तमान सन्दर्भ में चर्चा करता है तो कहता है,

''2. **किसान समुदाय:** आज हम जिस बात के साक्षी बन रहे हैं, वह है, वाणिज्यीकरण के द्वारा भारतीय कृषि के सामन्ती आधार पर एक और हमला । ऐसे वाणिज्यिक हमले (किसानों का कठोरतम शर्तो पर वाणिज्यिक दोहन करते हैं) तब से जारी है जब से ब्रिटेन ने भारत का औपनिवेशिकरण किया और उसके बाद भी अर्द्ध-औपनिवेशिक भारत में मुख्य रूप से ''विस्तृत सिंचाई योजनाओं'' और उसके बाद ''हरित क्रांति'' के नाम पर यह प्रक्रिया जारी है।...

''..... अर्द्ध-सामन्ती शोषण के बरकरार रहते हुये इन क्षेत्रों में उच्च वाणिज्यिकरण और मशीनीकरण के चलते वर्गीय संघटन के रूपों (जन गोलबन्दी के तरीकों के सन्दर्भ इसे अवश्य गौर करना चाहिये) में परिवर्तन हो सकते हैं। वर्तमान समय में क्रांतिकारियों को अर्द्ध- सामन्ती भारत के ग्रामीण इलाकों में दो तरह के इलाकों-वाणिज्यिक कृषि व कृषि-उद्योग वाले और आदिवासी क्षेत्रों सहित भीषण सामन्ती उत्पीड़न और दोहन के अति विशाल इलाकों से जूझना होगा तथा वहां काम करना होगा''।

(पृष्ठ-33 व 34, Resolution of the Central Committee, CRPCI (ML) on the Present National Situation and our Tasks, December 1996)

'भारतीय क्रांति का रास्ता' (The path of Indian Revolution) नामक दस्तावेज में CPRCI (ML) कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के सामने उपरोक्त दोनों तरह के इलाकों की चर्चा करते हुए कहता है कि जिन इलाकों में वाणिज्यिकरण हुआ है वहां पर जन-संघर्ष कृषि के संवर्धित मूल्यों जैसी मांगों के लिये होंगे या ये इलाके मुख्यत: साम्राज्यवाद विरोधी (या नव -औपनिवेशिक विरोधी) संघर्षों के इलाके होंगे तथा जबकि वे इलाके जहां सामन्ती उत्पीड़न व शोषण व्यापक है वहां पर सामन्ती शोषण व उत्पीड़न के खिलाफ जन-संघर्ष होंगे तथा इन इलाकों का CPRCI (ML) के अनुसार कृषि क्रांतिकारी आंदोलन तथा सशस्त्र संघर्ष के विकास की दृष्टि से रणनीतिक महत्व अधिक है। यह CPRCI (ML) की थीसिस की विसंगतियों का एक और उदाहरण है। भारत में एक तरफ ऐसे छोटे इलाकों का होना जहां वाणिज्यिकरण हुआ है वहां पर संघर्षों के चरित्र का नव-औपनिवेशिक विरोधी होना तथा शेष विशाल इलाकों में जहां ऐसा नहीं हुआ है वहां सामन्ती शोषण तीव्र है, वहां पर सामन्तवाद विरोधी संघर्ष का होना।

यहां एक दिक्कत और है वह है कि CPRCI (ML) साफ और स्पष्ट शब्दों में यह नहीं कहता है कि कृषि का पूंजीवादीकरण हुआ है। कृषि में पूंजी के प्रवेश से कृषि सम्बन्धें में व्यापक परिवर्तन हो चुका है। जिसे CPRCI (ML) वाणिज्यिकरण कहता है वो पूंजीवादी विकास के सिवा और क्या है? पूंजी के प्रवेश और उसके द्वारा कृषि सम्बन्धों को अपने आगोश में लेने का नतीजा है कि किसान आबादी में विभेदीकरण बढ़ा है, कृषि में पूंजी के प्रवेश ने आबादी में ध्रुवीकरण को तेज किया है तथा भारी मात्रा में खेतिहर सर्वहारा आबादी पैदा हुयी है। किसान आबादी में पिछले पचास वर्षों में सामन्ती जमींदार वर्ग खत्म हो गया है तथा पूंजीवादी फार्मर और धनी किसान देहात मे शासक वर्ग के हिस्से हैं तथा आज मध्यम किसानों, छोटे किसानों तथा खेतिहर सर्वहारा के हित धनी किसानों से एकदम अलग हैं। वाणिज्यिकरण, विभेदीकरण, ध्रुवीकरण तथा मशीनीकरण तथा ऐसी ही अन्य परिघटनायें जिनका जिक्र CPRCI (ML) अपने दस्तावेजों में करता है, ये सभी कृषि तथा कृषि सम्बन्धों के पूंजी के मातहत होने के परिणाम हैं। '90 के दशक में भारतीय शासक वर्ग की आर्थिक नीतियों से यह प्रक्रिया तेज ही होगी। आइये, देखें CPRCI (ML) का दस्तावेज 'वर्तमान परिस्थिति और हमारे कार्यभार' इस सन्दर्भ में क्या कहता है,

> ''सार रूप में कृषि के ''वैश्वीकरण'' का अर्थ हमारी कृषि के उन उत्पाद क्षेत्रों का धूर्ततापूर्वक वाणिज्यिकरण होगा जिनमें बहुराष्ट्रीय कम्पनियां अपने व्यापार और निवेश के जरिये मुनाफा कमाने का अवसर देखती हैं। इसका अर्थ किसान आबादी की, शहरी जीवनयापन के स्रोतों की व्यवस्था किये बगैर, व्यापक स्तर पर बेदखली होगा ।''

(पृष्ठ-11, पैरा- 1, ' National Situation and our Tasks, 'the Comrade' अंक-5)

एक अन्य स्थान पर चर्चा करता हुआ यह दस्तावेज कहता है किसान आबादी के बीच विभेदीकरण बढ़ रहा है और जमीन से किसानों की बेदखली बढ़ रही तथा किसान आबादी के बड़े हिस्से की अपनी जरूरतों के लिये बाजार पर निर्भरता बढ़ रही है। इतना सब कुछ हो रहा है पर यह कृषि में पूंजीवादी विकास का परिचायक नहीं है। जरा CPRCI (ML) के शब्दों पर गौर कीजिये,

''**किसान समुदायः** किसान समुदाय का आधार पहले ही खिसकाया जा रहा हैं, NEP के अन्तर्गत उर्वरकों और कीटनाशकों के दामों में तीव्र वृद्धि किसान आबादी को निचोड़ रही है। कृषि को ऋण, सकल ऋण में 17 फीसदी से गिराकर 12 फीसदी हो गया है तथा किसान आबादी की महाजनों और सूदखोरों पर निर्भरता बढ़ गयी है। किसान परिवारों में आधें के पास एक एकड़ से भी कम जमीन है जिसका अर्थ है कम से कम वे और शायद और अधिक बाजार से अनाज खरीद रहे हैं।....

सरकारी रिकार्ड (जिसमें हमेशा जोतों की गैर बराबरी को कम करके दिखाया जाता है) के अनुसार ग्रामीण परिवारों के 4 फीसदी जमीन के 33 फीसदी के मालिक है जबकि ग्रामीण परिवारों के सबसे गरीब 66 फीसदी परिवारों के पास 12 फीसदी जमीन हैं।...'' (पृष्ठ, 22.23, 'National Situation ' the Comrade' अंक-5)

आधे से अधिक बाजार से अपनी जरूरत के लिये अनाज खरीद रहे हैं तब भी पूंजीवाद नहीं है तथा राष्ट्रीय बाजार नहीं है। विभेदीकरण के सवाल पर CPRCI (ML) यह कहता है कि अर्द्ध-सामन्ती उत्पादन पद्धति में भी किसान के बीच विभेदीकरण की प्रक्रिया जारी रहती है।

''अर्द्ध-सामन्ती उत्पादन पद्धति में किसान समुदाय एक एकाश्म (उवदवसपजीपब) वर्ग के रूप में नहीं रह गया है और इसमें विभेदीकरण की प्रक्रिया के कारण विभिन्न संस्तर अपनी विशेषताओं के साथ पैदा हो रहे हैं।'' (पृष्ठ-21, पैरा-2, Programme for People's Democratic Revolution In India)

CPRCI (ML) के अनुसार दशकों से यह प्रक्रिया जारी है और यह मात्रात्मक परिवर्तन किसी गुणात्मक परिवर्तन को जन्म नहीं देते। कुल मिलाकर, यदि हम भारतीय कृषि और कृषि सम्बन्धों को मार्क्स और लेनिन द्वारा पूंजीवादी विकास (और भिन्न-भिन्न रास्तों के भी) के बारे में बतायी गयी प्रस्थापनाओं (जैसे माल अर्थव्यवस्था का प्रधान होना, सामाजिक श्रम विभाजन, किसान आबादी में विभेदीकरण, श्रम-शक्ति का माल में बदलना, राष्ट्रीय बाजार का निर्माण, ग्रामीण आबादी के बनिस्पत शहरी आबादी का अधिक तेजी से बढ़ना, छोटे माल उत्पादकों की तबाही, खेतिहर सर्वहारा व अर्द्ध-सर्वहारा आबादी में भारी वृद्धि आदि) की कसौटी में कसें तो हम पायेंगे कि आज भारतीय कृषि और कृषि-सम्बन्ध पूंजी के मातहत हैं। सामन्ती जमींदार वर्ग की जगह, शोषक वर्ग देहात में, आज पूंजीवादी फार्मर और धनी किसान बनते हैं तथा ये भारतीय शासक वर्ग के हिस्से हैं। कृषि में जहां तक साम्राज्यवादी पूंजी की घुसपैठ और प्रभाव का सवाल है वहां पर हमारा कहना है कि इसी वर्ग के जरिये वह कृषि में प्रवेश कर रही है और इस वर्ग का हित इसमें है कि ऐसा हो।

कृषि में पूंजीवादी विकास और उसके प्रभाव में अगर हम दूसरी दृष्टि से विचार करें कि आज किसान आबादी में संघर्ष के मुद्दे क्या हैं। उनके आंदोलन में उठने वाली मांगों के प्रकृति क्या है। 'the Comrade' के विभिन्न अंकों में किसान आंदोलन की जो रिर्पोट छपी हैं वो क्या कहती है। अगर इस सवाल का जवाब देखा जाए तो हम पायेंगे कि आज किसान आंदोलन की मांगों की प्रकृति मूलतः पूंजीवादी शोषण और उत्पीड़न के खिलाफ है। मजदूरी, कृषि उपजों का संवर्धित मूल्य, खाद और अन्य कृषि उपयोगी सामग्रियों पर सब्सिडी, बिजली-पानी की समस्यायें, आदि सवालों के इर्द-गिर्द ही हम किसानों के संघर्ष को मूलतः पायेंगे।

धनी किसानों और पूंजीवादी फार्मरों के व्यवहार को देखें तो हम क्या पायेंगे। उनके बड़े इजारेदार पूंजीपति तथा औद्योगिक पूंजीपति से अन्तरविरोध बनते हैं तथा अपने हितों के लिये ये संघर्षरत रहते हैं लेकिन इन अन्तरविरोधों की प्रकृति शासक वर्ग के आपसी अन्तरविरोधों की है। टिकैत व शरद जोशी जैसे, सामन्ती शक्तियों का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं बल्कि वे धनी किसानों और पूंजीवादी फार्मरों का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा यह वर्ग नई आर्थिक नीतियों का समर्थक तथा साम्राज्यवाद का आधार है। यह भारतीय क्रांति का ढुल-मुल दोस्त भी न रहकर दुश्मन शासक वर्ग का हिस्सा है। इसका दोहरा न होकर एक ही चरित्र है, वह है, शोषक का चरित्र।

यहीं पर एक अन्य सवाल राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग को हम लेना चाहेंगे। CPRCI (ML) का कहना है ,

> ''8.4 ... यह एक दोहरे चरित्र वाला वर्ग है इसलिए इसकी दोहरी भूमिका है। यह दलाल नौकरशाह पूंजीपति वर्ग द्वारा किये जाने वाले दमन तथा स्थानीय सामन्ती ताकतों द्वारा इसके रास्ते में पैदा की जाने वाली अनेक रूकावटों के कारण रोष में रहता है। यद्यपि इसकी पहल में भौतिक तथा राजनैतिक मंचों का अभाव है।....'' (पेज-23, पैरा-3, वही)

इस सवाल पर हम यही कहना चाहेंगे कि भारतीय पूंजीपति वर्ग को दो हिस्सों में बांटा जाना गलत है आज यह बात स्वयं तथ्यों से साबित हो रही है कि यह वर्ग ना तो अपनी पहलकदमी पर अपने भौतिक तथा राजनैतिक मंचों का निर्माण कर रहा है और ना ही अपनी मांगों के लिये संघर्षरत है। यह वर्ग भारतीय सामाजिक जीवन में मौजूद नहीं है लेकिन यह कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के दिमाग और साहित्य में मौजूद है। सामाजिक अस्तित्व विहीन इस वर्ग को कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों ने अपनी सोच के दायरे के कारण अस्तित्व प्रदान किया हुआ है।

भारतीय समाज के मूल अन्तरविरोधों और उन्हें हल करने के सवाल पर ब्च्ब्प् ;डस्द्ध का कहना है,

> '' 9. भारतीय समाज के उपरोक्त वर्गीय विश्लेषण से यह बात पूरी तरह से स्पष्ट है कि साम्राज्यवाद और सामन्तवाद मूल सामाजिक भार बने हुये हैं जो कि भारतीय जनता की सामाजिक प्रगति और समृद्धि को रोके हुये हैं।तदनुरूप, साम्राज्यवाद और भारतीय जनता के बीच तथा सामन्तवाद तथा भारतीय जनता के व्यापक हिस्से के बीच के अन्तरविरोध भारतीय समाज के दो मूल सामाजिक अन्तरविरोध बने हुये हैं इसलिए, साम्राज्यवाद से राष्ट्रीय स्वतंत्रता और सामन्तवाद से जनवादी मुक्ति-उत्पादन में मौजूद सामन्ती और नव औपनिवेशिक सम्बन्धों को समाप्त करेगी-वर्तमान भारतीय समाज विकास की अवस्था में भारतीय क्रांति के दो मुख्य कार्यभार बनते हैं। इस राष्ट्रीय जनवादी क्रांति का मुख्य आर्थिक सार और धुरी कृषि क्रांति होगी।'' (पृष्ठ-24, पैरा -2, वही)

यहां पर हमारा कहना है भारतीय समाज का वर्गीय विश्लेषण वो बात साबित नहीं करता है जो CPRCI (ML) स्थापित करना चाहती है। सच्चाई यह है आज भारतीय समाज की आबादी का बहुलांश हिस्सा किसानों के होने के स्थान पर सर्वहाराओं का है (40 करोड़ की कुल कामगार आबादी में खेती करने वाले किसानों की संख्या लगभग 12 करोड़, शहरी अर्द्ध सर्वहारा की 3ण्5

करोड़, निम्न पूंजीपति वर्ग (किसानों को छोड़कर) के कामगारों की संख्या करीब 5 करोड़ तथा खेतिहर सर्वहारा सहित सर्वहारा वर्ग की आबादी 20 करोड़ से अधिक है) । अत: भारतीय क्रांति की मुख्य लड़ाकू शक्ति सर्वहारा बनते हैं और भारतीय समाज के दो बुनियादी अंतरविरोधों, पूंजी व श्रम का तथा साम्राज्यवाद व भारतीय जनता के बीच के अन्तरविरोधों को एक सर्वहारा क्रांति अर्थात्समाजवादी क्रांति ही हल कर सकती है। इन दोनों बुनियादी अन्तरविरोधों में श्रम और पूंजी का अन्तरविरोध ही प्रधान अन्तरविरोध है।

सर्वहारा वर्ग सर्वहारा समाजवादी क्रांति की धुरी है और उसके नेतृत्व के द्वारा ही यह क्रांति सम्पन्न होगी। पूंजी और श्रम का प्रधान अन्तरविरोध इस तरह से श्रम के पक्ष में हल होगा। छोटे किसान, अर्द्ध-सर्वहारा इस क्रांति की रिजर्व फोर्स होंगे तथा मध्यम किसान ढुल-मुल मित्र।

कुछ अन्य सवाल

भारतीय संसदीय व्यवस्था और संसदीय संघर्ष का सवाल : CPRCI (ML) भारतीय संसदीय व्यवस्था के चरित्र तथा जनवाद की उपस्थिति की मात्रा पर इस तरह से टिप्पणी करता है,

> '' 1.2... भारत में संसदीय व्यवस्था मुख्यत: निरंकुश भारतीय राज्य के जो कि अर्द्ध-औपनिवेशिक अर्द्ध-सामन्ती सामाजिक व्यवस्था को बढ़ाता है और प्रचण्ड रूप से उसकी रक्षा करता है के घटिया ढंग से मुलम्मा चढ़ाये हुये आवरण से अधिक कुछ नहीं है। किसी बुर्जुआ जनवाद के विपरीत यहां भारत में औपनिवेशिक उत्पत्ति , गैर जनवादी सामाजिक आधार, दलाल-सामन्ती वर्ग चरित्र और वर्तमान राज्य का निरंकुश ढंग से संचालन है, संविधान और संसदीय व्यवस्था कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के सन्दर्भ में यह लाजिमी बना देती है कि उन्हें मूल रूप से एक निरंकुश देश में काम करना है, सुदृढ़ आधार पर जनवादी क्रांतिकारी आंदोलन विकसित करने के लिये सदैव अपने सांगठनिक तंत्र को गुप्त रखते हुये मुख्य जोर गैर-कानूनी गतिविधियों के रूप को देना होगा। भारत में ना तो इसकी सम्भावना है और न ही आवश्यकता कि कानूनी संघर्षो (या संसदीय संघर्ष) को संघर्ष के एक मुख्य रूप के तौर पर एक लम्बे समय तक पूरे देश में एक साथ सत्ता पर कब्जे के लिये जनता को तैयार किया जाय, जैसा कि एक पूंजीवादी देश में आवश्यक होता है।'' (पृष्ठ-2 व 3, Path of the Indian revolution; अगस्त, 1995)

CPRCI (ML) के भारतीय समाज व्यवस्था के विश्लेषण और यथार्थ के मध्य का अन्तर यहां पुन: स्पष्ट रूप से सामने आ जाता है। वह विसंगतिपूर्ण स्थिति का शिकार हो जाता है। भारतीय समाज व्यवस्था अपने सामन्ती अतीत के दुमछल्ले के साथ (मूलाधार में सामन्ती अवशेष तथा अधिरचना में सामन्ती औपनिवेशिक गैर जनवादी मूल्यों की उपस्थिति) मूलत: एक पूंजीवादी व्यवस्था बन गयी है। यहां सीमित स्तर पर पूंजीवादी जनवाद है, यहां ढेरों पूंजीवादी-जनवादी संस्थाओं की अपने जनविरोधी चरित्र के साथ उपस्थिति है। संसद, विधानसभायें तथा ऐसी कई और अन्य संस्थायें इसकी अभिव्यक्ति हैं। ये कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को कानूनी संघर्ष लड़ने का एक सीमित अवसर

प्रदान करती है। CPRCI (ML) एक तरफ तो भारतीय राज्य को निरंकुश चित्रित करती है परन्तु संसदीय संघर्ष को संघर्ष के रूप के तौर पर स्वीकारती है। इसी दस्तावेज के अगले ही बिन्दु में संविधान और संसदीय व्यवस्था के कारण अल्प (marginal) कानूनी अवसरों की बात करती है। कानूनी रूपों को क्रांतिकारी आंदोलन की सेवा करने के लिये उपयोग करने की बात करती है।

इस सवाल पर हमारा कहना है कि कानूनी संघर्ष और संसदीय संघर्ष को संघर्ष के रूपों के बतौर इस्तेमाल करने की सम्भावना ही भारतीय समाज में पूंजीवादी विकास और सीमित बुर्जुआ जनवाद की उपस्थिति के कारण पैदा हुयी है। कानूनी संघर्ष और संसदीय संघर्ष के रूपों को इस्तेमाल करने या ना करने का सवाल रणकौशलात्मक दिशा से जुड़ा हुआ है। यह क्रांतिकारी व्यवहार में लचीलेपन के साथ जुड़ा हुआ है। देश-काल की परिस्थितियों, क्रांतिकारी शक्तियों की स्थिति और प्रभाव तथा जनता की चेतना व संघर्ष के स्तर से यह तय होता है कि संघर्ष के किस रूप का कितना प्रयोग किया जाना चाहिये। इन कारणों से ही ऐसे सवाल रणकौशलात्मक लाइन के हिस्से होते हैं तथा क्रांतिकारी आंदोलन के विकास के चरण में मुख्य या गौण, आवश्यक या निरर्थक रूप ग्रहण करते हैं। हां, पहले लेनिन ने और बाद में घटी घटनाओं ने इस बात को स्थापित किया है कि कानूनी रूपों का इस्तेमाल करते समय सांगठनिक लाइन के तौर पर कम्युनिस्ट पार्टी को मूलत:गुप्त होना चाहिये तथा उसे गैर-कानूनी रूपों को इस्तेमाल करने में दक्ष होना चाहिये। यह इसलिये कि वो संकट- काल का सामना कर सके तथा नेतृत्व दे सके और इसी वजह से विचारधारात्मक विच्युतियों का शिकार न हो जाये। सांगठनिक लाइन के सवाल को रणकौशलात्मक लाइन से गड्ड-मड्ड करना गलत होगा।

CPRCI (ML) एक तरफ तो लेनिनवादी अवधारणाओं को स्वीकारती है और दूसरी तरफ भारतीय सामाजिक ढांचे को अर्द्ध-औपनिवेशिक अर्द्ध-सामन्ती मानती है। रणकौशलात्मक सवालों पर लेनिनवादी व्यवहार की मांग परन्तु भारतीय समाज का उनका गलत विश्लेषण उन्हें विसंगतिपूर्ण अवस्थिति को अपनाने या रणकौशलात्मक सवालों पर कुछ निश्चित शर्तें थोपने की ओर ले जाता है।

राष्ट्रीयता का सवाल : CPRCI (ML) भारत में राष्ट्रीयता की समस्या की व्याख्या मुख्यत: साम्राज्यवादी नव औपनिवेशिक उत्पीड़न के रूप में करता है। उन्हीं के शब्दों में

> श्श 5ण्1 इस तरह भारत के जटिल राष्ट्रीय सवाल का प्रधान पहलू समग्र रूप में भारतीय जनता के साथ ही प्रत्येक राष्ट्रीयता के अप्रत्यक्ष साम्राज्यवादी उत्पीड़न (अर्थात्नव औपनिवेशिक गलाघोंटू पकड़ द्वारा राष्ट्रीय उत्पीड़न) द्वारा निर्मित होता है।''
> (पृष्ठ-15, पैरा - 3, Programme for people's Democratic' Revolution in India)

CPRCI (ML) का मानना है कि साम्राज्यवाद द्वारा उत्पीड़न इस राष्ट्रीय सवाल का प्रधान पक्ष है वहीं गौण (secondary) पक्ष राष्ट्रीय असमानता तथा विभिन्न राष्ट्रीयताओं के सामाजिक, आर्थिक विकास के पिछड़ेपन तथा विभेद में है। भारत का दलाल बुर्जुआ शासक वर्ग तथा भारतीय राज्य इनके उत्पीड़न में साम्राज्यवाद का यंत्र है तथा भारत में कोई एक बड़ी और प्रभावी राष्ट्रीयता नहीं है जो कि अन्य राष्ट्रीयताओं का उत्पीड़न करती है यद्यपि विभिन्न राष्ट्रीयताओं के अपेक्षाकृत विकसित या बड़ी राष्ट्रीयताओं के बीच के तनाव को भारतीय राज्य पालता है।

CPRCI (ML) का यह विश्लेषण गलत है, सिवाय इस बात के कि भारत में कोई ऐसी बड़ी राष्ट्रीयता नहीं है जो कि अन्य राष्ट्रीयताओं का उत्पीड़न करती हो।

भारत एक बहुराष्ट्रीय देश है और भारत के पूंजीवादी विकास ने विभिन्न राष्ट्रीयताओं के विभेद को बढ़ाया है तथा इन राष्ट्रीयताओं की जनवादी आकांक्षाओं और हितों का भारतीय राजव्यवस्था व शासक वर्ग से अन्तरविरोध बनता है। यह कहा जा सकता है कि पूंजीवादी विकास ने ही इस अन्तरविरोध को जन्म दिया है। यह एक पूंजीवादी परिघटना है कोई सामन्ती परिघटना नहीं। भारत के प्रधान अन्तरविरोध – पूंजी और श्रम के बीच के अन्तरविरोध – के श्रम के पक्ष में हल होने से ही यह समस्या हल होगी। भारत क्योंकि साम्राज्यवाद से आर्थिक नव औपनिवेशिक सम्बन्धों में बंधा हुआ है इसलिए साम्राज्यवादी वित्तीय पूंजी भारतीय पूंजी के साथ मिलकर भारतीय जनता का शोषण करती है और इन अर्थों में वो इन राष्ट्रीयताओं की जनता का शोषण भी करती है। और इन्हीं अर्थों में वह साम्राज्यवादी उत्पीड़न की शिकार है जिन अर्थों में भारतीय जनता साम्राज्यवाद द्वारा उत्पीड़न की शिकार है। जहां तक विभिन्न राष्ट्रीयताओं के बीच विभेद का सवाल है यह असमान तथा असंतुलित पूंजीवादी विकास का परिणाम है और भारतीय सत्ता जो कि एक पूंजीवादी राजसत्ता है इनका भयानक दमन करती है।

जहां तक साम्राज्यवाद का सवाल है वह भारतीय पूंजीपति वर्ग की राजसत्ता पर दबाव बनाने के लिये बाज दफा भारत में चलने वाले राष्ट्रीयता के आंदोलन यथा कश्मीर, नागा इत्यादि का इस्तेमाल करता है। भारतीय राजसत्ता के विरूद्ध चलने वाले राष्ट्रीयता के आंदोलनों का चरित्र साम्राज्यवाद विरोधी नहीं है। भारतीय राजसत्ता इन आंदोलन के नेताओं को अपनी पूंजीवादी व्यवस्था में लगातार आत्मसात करने का प्रयत्न करती रही है और उसमें सफल रही है।

राष्ट्रीयता की समस्या का समाधान भारतीय सर्वहारा के नेतृत्व में होने वाली पूंजीवाद–साम्राज्यवाद विरोधी समाजवादी क्रांति ही कर सकती है जो कि इन राष्ट्रीयताओं के आत्मनिर्णय के अधिकार को सर्वहारा नीति के तहत ही स्वीकारती है।

सशस्त्र संघर्ष का सवाल : CPRCI (ML) सशस्त्र संघर्ष के सवाल पर नवजनवादी क्रांति मानने वालें कई संगठनों से एक भिन्न दृष्टिकोण रखती है। जहां कतिपय संगठन पहले दिन से सशस्त्र संघर्ष प्रारम्भ करने की बात करते है वहीं CPRCI (ML) का मानना हैं कि यह तय करने में जनता की चेतना और सशस्त्र संघर्ष शुरू करने के लिये उसकी तैयारी, वर्ग-संघर्ष और पार्टी की विकास की अवस्था तथा क्रांतिकारी संयुक्त मोर्चे के विकास की अवस्था मूल रूप से भूमिका निभाते हैं। CPRCI (ML) के शब्दों में,

> '' 5. सशस्त्र संघर्ष वर्ग संघर्ष का उच्चतम रूप है जिसकी धुरी कृषि क्रांतिकारी आंदोलन है।..... यह चेतना का स्तर और जनता की तैयारी है जो सशस्त्र संघर्ष सहित संघर्ष के किसी भी रूप की आवश्यकता तथा उसे प्रारम्भ करने को तय करती है। यद्यपि कृषि क्रांतिकारी आंदोलन के विकास के एक निश्चित स्तर पर ही सशस्त्र संघर्ष सही ढंग से शुरू किया जा सकता है.....कुल मिलाकर सशस्त्र संघर्ष के विकास की प्रक्रिया को वर्ग संघर्ष , पार्टी और क्रांतिकारी संयुक्त मोर्चे के

विकास की प्रक्रिया के साथ जैविक अन्तर सम्वन्धों में ही देखा जाना चाहिये।''
(Page -16-17, Path of the Indian Revolution)

CPRCI (ML) आगे कहता है कि वर्तमान भारत की स्थिति ऐसी नहीं है कि मुक्त आधार क्षेत्र स्थापित करने के लिये तुरन्त सशस्त्र संघर्ष प्रारम्भ किया जा सके। CPRCI (ML) का कहना है, देश में कई स्थानों पर गुरिल्ला क्षेत्र स्थापित करने होंगे और शासक वर्ग क्योंकि एक साथ उनसे नहीं निपट सकेगा और इस तरह से मुक्त आधार क्षेत्र की ओर बढ़ा जा सकता है। राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय परिस्थितियों में कुछ प्रमुख बदलाव आने से मुक्त आधार क्षेत्र के विकास की ओर तेजी से बढ़ा जा सकता है। गुरिल्ला सेनायें एक लम्बे समयान्तराल तक शासक वर्ग की सेनाओं से लड़ते हुये, अपनी संख्या और अनुभव में वृद्धि करेंगी और शासक वर्ग की सेनाओं को इस तरह से हराने में सफल होंगी और उस मौके पर वह जनसेना में तब्दील हो जायेगी।

CPRCI (ML) का यह विश्लेषण और भविष्य का आकलन चीन की नव जनवादी क्रांति के विकास के अनुभव को भारतीय समाज के अपने गलत विश्लेषण के साथ मिलाने का नतीजा है। चीन में जब लोकयुद्ध विकसित हुआ था तब कि परिस्थितियां आज के भारत से नितान्त भिन्न थीं। आज भारत में एक केन्द्रीकृत सत्ता है तथा एक ऐसी सेना है जो आधुनिक हथियारों से लैस है और अपने आकार के विशाल होने के साथ तेजी से देश के किसी भी इलाके में पहुंच सकती है। भारत एक ऐसा देश है जहां पर शासकवर्ग कमोबेश एकजुट है जबकि तब का चीन का शासक वर्ग बंटा हुआ था तथा युद्ध सरदार लगातार आपस में संघर्षरत रहते थे, ऐसी ही विभिन्न साम्राज्यवादी शक्तियों की स्थिति भी थी।

कुल मिलाकर आज की भारत की स्थिति, वर्ग शक्तियों का सन्तुलन, इसकी राजसत्ता की स्थिति और चरित्र तथा अन्य परिस्थितियां भारत में दीर्घकालिक लोकयुद्ध के स्थान पर सशस्त्र आम जनविद्रोह की ओर ले जायेंगी। वैसे इस सवाल के विविध आयामों के साथ व्यापक चर्चा इसी अंक के एक अन्य आलेख में की गयी है।

अन्त में: कुल मिलाकर हम यह कहना चाहेंगे कि CPRCI (ML) को राजनीतिक आजादी के सवाल पर अपनी अवधारणागत सोच को लेनिनवाद के अनुरूप ठीक करना चाहिये तथा ठीक अवस्थिति के अनुरूप निष्कर्ष निकालने चाहिये। इसी तरह से, साम्राज्यवाद के तीसरी दुनिया के साथ सम्बन्धों को ऐतिहासिक विकासक्रम में देखना चाहिये। औपनिवेशिक से आर्थिक नव औपनिवेशिक की यात्रा दीर्घकालिक तौर पर साम्राज्यवाद के पीछे हटने तथा आर्थिक शोषण के तरीकों पर निर्भर रह जाने को मूलत: दर्शाती है।

भारत के सन्दर्भ में भारत की ठोस परिस्थितियां यह दिखलाती हैं कि भारत मूलत: एक पूंजीवादी देश में तब्दील हो चुका है तथा यह साम्राज्यवाद के साथ आर्थिक नव औपनिवेशिक सम्बन्धों में बंधा हुआ है। इस विश्लेषण को स्वीकारना चाहिये तथा उन विसंगतियों से बचना चाहिये जो उनकी सोच की जड़ता के कारण पैदा हो रही है।भारतीय समाज को आज जनता की जनवादी क्रांति की नहीं बल्कि समाजवादी क्रांति की दरकार है।

□□□□□